बौद्ध कला-कृतियाँ

लेखिका

कुमारी विद्यावती मालविका

एम. ए., साहित्यरत्न

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी-१ • कलकत्ता-७

लेखिका—
कुमारी विद्यावती मालविका
आवरण शिल्पी—
कांजिलाल

आवृत्ति—
प्रथम—नवम्बर १९५७

मूल्य—
तीन रुपया मात्र
दो रुपया मात्र

प्रकाशक—
ओमप्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो० बॉ० नं० ७०, ज्ञानवापी,
वाराणसी—१

मुद्रक—
श्रीकृष्णचन्द्र बेरी
विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०,
डी० १५/२४, मानमन्दिर,
वाराणसी

अनुक्रमणिका

आमुख

विरस-वदन पर चिन्ता की रेखा स्पष्ट हो रही थी, अलकें विखर रही थीं, मानों व्याकुल सुकुमारी-सी संस्कृति साकार होकर भगवान् बुद्ध के अवतरण-अवधि की रेखाओं को गिनती शून्य-पथ पर प्रतीक्षा कर रही थी। उसी समय, आज से लगभग ढाई-हजार वर्ष पूर्व लुम्बिनी के पावन शाल-वन में महारानी महामाया के शिशु के रूप में करुणा-निधि अवतरित हुए। महाप्रजापति गौतमी के स्नेह में सिद्धार्थ के जीवन का प्रथम प्रहर पूर्ण हुआ। मधुऋतु-सी वधूरानी यशोधरा देवी ने सौन्दर्य एवं गुणों की सजीव प्रतिमा बनकर कपिल-वस्तु के राज-भवन में प्रवेश किया। उनसे राहुल जेसे शिशु को पाकर कपिलवस्तु आनन्द-विभोर हो गया। किन्तु, विश्व-कल्याण के हेतु कपिल-वस्तु के हृदय-देव सिद्धार्थ कुमार ने नवजात शिशु, प्रणयिनी प्रिया तथा राज-वैभव को त्याग दिया। अर्ध-रात्रि की नीरव वेला में उन्होंने महाभिनिष्क्रमण कर अनोमा नदी को पार किया और मगध में उरुवेला के वन्य प्रान्त में कठिन तपस्या की। और, उसी महान तपस्वी ने भगवान् बुद्ध बनकर ऋषिपतन जा धर्म-चक्र-प्रवंतन किया। तब, प्रणि-मात्र को करुणा एवं मैत्री का प्रशस्त वरदान मिला। मगध, कोशल, कोशाम्बी और मालव ही क्या, समस्त भारत को विपत्ति से त्रास मिला। साथ ही, मोक्ष का पथ भी।

तथागत के जीवन-काल तथा उनके पीछे की अवंति-नरेश चंड प्रद्योत महाराजा बिम्बिसार, सम्राट देवानांप्रिय अशोक और कनिष्क के बौद्ध-युगीन भारत में स्तूप, विहार, स्तम्भ, तोरण-द्वार और

भव्य प्रतिमाओं के रूप में श्रद्धा-भावना तथा उत्कृष्ट कला-साधना निखर गई। उस युग में सूत्रों एवं वन्दना के स्वरों से भारत को अद्भुत शान्ति प्राप्त हुई। अगरु-धूम की श्याम लहरियों के मध्य उपदेशों ने शील-पालन की प्रेरणा दे जीवन को धन्य बना दिया।

बौद्ध संस्कृति, कला-कृतियाँ और निर्मल भावनाओं हिमकिरीटनी भारत-भूमि के अञ्चल से विश्व को प्राप्त हुईं। सम्प्रति उनकी पुण्य स्मृतियों को संजोईं कला-कृतियाँ चीन, जापान, श्याम, सिंहल, बर्मा, तिब्बत आदि सुदूर देशों में भी विद्यमान हैं, जिन म से कुछ पावन स्थलियाँ अति प्रसिद्ध हैं। भारत में भी लुम्बिनी सारनाथ, बुद्धगया, कुशीनगर, राजगृह, अजंता, उज्जैन, साँची आदि सर्व विदित बौद्ध-कला-केन्द्र हैं। कुछ ऐसे भी स्थल हैं जिनके गर्भ में छिपे हुए कला-आगार अतीत के गौरवमय इतिहास को लिये हुए समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। और, कुछ ऐसे भी कला-केन्द्र हैं। जो नितान्त ध्वंसित हो अपने वैभव के इतिहास को विस्मृत कर चुके हैं। इन कला-केन्द्रों का इतिहास विवरण तथा दर्शन मात्र हृदय को श्रद्धा-विभोर कर देता है। उनके सम्बन्ध में कुछ लिखना उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करना है।

एक दीर्घ-काल से सारनाथ से प्रकाशित होने वाले मासिक पत्र "**धर्म-दूत**" में मेरी कवितायें, कहानियाँ और लेख प्रकाशित होते रहे हैं। बौद्ध-धर्म सम्बन्धी पुरातत्व के संबंध में लिखने की प्रेरणा प्राप्त कर मैंने एक लेख-माला, बौद्ध-कला-कृतियों के संबंध में प्रारम्भ की। लेखों के प्रकाशित होते रहने से मेरा उत्साह सदा बना रहा। श्रद्धेय भिक्षु धर्मरक्षित जी ने (अपरिचित होते हुए भी) मेरे उत्साह

वद्धि में सहायता की। अतः मैं उनकी कृतज्ञ हूँ। मैंन मध्य-भारत, विन्ध्य-प्रदेश, एवं मध्य-प्रदेश के कुछ बौद्ध-कला-केन्द्रों के सम्वन्ध में लेख लिखे। वौद्ध-कला-कृतियों के उत्कृष्ट प्रतीकों को ही मैंने अपने इस लेख-माला में स्थान दिया।

यह संग्रह उसी लेख-माला का ग्रंथ-रूप है। इसमें वौद्ध-कला-कृतियों के अतिरिक्त दो लेख ऐसे भी हैं जिनका सम्वन्ध मुस्लिम एवं राजपूत कलाकृतियों से है। मैंने इतिहास तथा पुरातत्व प्रेमियों के लाभार्थ इन्हें भी दे दिया है। प्रारम्भ में मैंने कुछ विस्तृत जानकारी के लिये भूमिका भी लिख दी है। आशा है उससे पाठकों को विशेष लाभ होगा।

उज्जैन

वुद्ध-पूर्णिमा २४९९

—कुमारी विद्या

भूमिका

बुद्ध-काल (ईस्वी पूर्व ६२३–५४३) में जम्बू द्वीप १६ महा-जनपदों में विभक्त था। जिनमें काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पंचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक, अवन्ति, गन्धार और कम्बोज की गणना होती थी। अपरान्तक, दक्षिण-पथ और प्राच्य प्रदेश ऐसे भाग थे जिनका विभाजन जनपद के रूप में न होकर, प्रदेश के रूप में हुआ था। त्रिपिटक, पालि एवं अट्ठकथा ग्रन्थों में मध्य-मंडल की सीमा इस प्रकार वर्णित हैः—

"पूर्व दिशा में कजंगला निगम[1]...पूर्व दक्षिण में सललवती नदी[2]...दक्षिण में श्वेत-कर्णिक-निगम[3]...पश्चिम में यूथ नामक ब्राह्मणों का ग्राम[4]...उत्तर में उशीरध्वज पर्वत।"[5]*

इस क्षेत्र अवन्ती, महाकोशल, अश्वक आदि कतिपय जनपद नहीं पड़ते थे। फिर भी अट्ठकथा ग्रन्थों में जहाँ जनपदों का वर्णन किया गया है वहाँ गान्धार एवं कम्वोज जनपदों को छोड़ कर शेष सभी मध्य-मंडल में गिनाये जाते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बुद्ध-काल में भारत ३ मंडलों और ५ प्रदेशों में विभाजित

---

१. वर्तमान कक्कंजोल जिला संथाल–परगना (विहार)।
२. वर्तमान सिलई नदी (हजारी बाग और मेदिनीपुर जिला)
३. हजारीबाग जिलें में कोई स्थान।
४. वर्तमान थानेश्वर जिला कर्नाल।
५. हरिद्वार के आसपास कोई पर्वत।
* विनय-पिटक ३, ५

था। मध्यमंडल उसका सर्वाधिक समृद्ध एवं कला कृतियों का मनहर आगार था।

हम देखते हैं कि भगवान्-बुद्ध ने उरुवेला में वोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् कुशीनारा में महापरिनिर्वाण लाभ तक अपने जीवन के ४५ वर्षों तक उपरोक्त मध्य-मंडल की सीमा के अन्तर्गत ही विचरण करने में व्यतीत किये थे। यद्यपि भगवान् बुद्ध पद-चारिका करते हुए अवन्ति, अश्वक आदि जनपदों में नहीं गये थे तथापि उनके शिष्यों ने अवन्ति, चेदि आदि प्रदेशों से लेकर गोदा-वरी के तीर तक धर्म-प्रचार किया था। पुण्योवाद–सुत्त[1] की अट्ठकथा से विदित होता है कि भगवान् वुद्ध आयुष्मान पूर्ण की प्रार्थना स्वीकार कर सूनोपरान्त प्रदेश में भी गये थे। जाते समय मार्ग में उन्होंने अपने पदचिह्न नर्मदा के पुलिन और सत्यवदु पर्वत पर बनाया था। जो दीर्घकाल तक एक महान के तीर्थ के रूप माना जाता था। सम्प्रति उनके प्राक्चिह्न विन्ध्याचल पर्वत एवं नर्मदा के पुलिन में अवश्य ही विद्यमान होंगे। **बावरी** की शिष्य परम्परा तथा महाकात्यायन एवं उनके शिष्यों ने वतमान मध्य-भारत-महामालव) प्रदेश, मध्य-प्रदेश एवं विन्ध्य-प्रदेश में धर्म-प्रचार कर अनेकानेक चैत्य तथा स्तूपों का निर्माण करवाया।

सम्राट देवानांप्रिय अशोक के समय में इन प्रदेशों में वौद्ध-धर्म-प्रचार की निर्मल, शान्तिमयी श्रोतस्विनी प्रवाहित हुई थी। उस काल में बहुसंख्यक स्तूपों एवं विहारों का निर्माण हुआ था। अशोक के धर्म प्रचार के इतिहास पर दृष्टिपात करने से

१. मज्झिम निकाय ३, ५, ३ और संयुक्त निकाय ३४, ४, ६

विदित होता है कि महिसक मंडल जिसे आजकल महेश्वर (इंदौर राज्य) कहते हैं और जो विन्ध्याचल तथा सतपुड़ा की मनोहारिणी पर्वत माला के अंक में स्थित है। वहाँ धर्मप्रचारार्थ महादेव स्थविर भेजे गये थे। उन्होंने वहां धर्म का जयघोष किया। उसके पश्चात् उस प्रदेश में धर्म की श्रीवृद्धि ही होती रही। इस प्रकार अशोक काल तक मध्यभारत, मध्यप्रदेश एवं विन्ध्यप्रदेश का विस्तृत भू-भाग जो कभी भारतीय संस्कृति का महान केन्द्र बना, भिक्षुओं के काषाय वस्त्रों एवम् उपासक-उपासिकाओं के शीलपालनपूर्ण निर्मल चरित्रों तथा तथागत की पावन प्रतिमाओं की परिशुद्ध आभा में आलोकित था। यहाँ मैं इन तीनों प्रदेशों के सम्बन्ध में अलग अलग संक्षेप में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझती हूँ।

मध्यभारत

वर्तमान मध्यभारत अवन्ति जनपद में पड़ता था जिसकी राजधानी उज्जैनी थी, जो अच्युतगामी बसाई गई थी। यह जनपद दो भागों में विभक्त था। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जैनी में थी और दक्षिण भाग की महिष्मती में।

दीघनिकाय महागोविन्द सुत्त के अनुसार अवन्ति जनपद की राजधानी माहिष्मती थी। जहाँ का राजा वेस्सभू था। वहीं यह भी वर्णन आया है कि भगवान् बुद्ध ही महागोविन्द नामक ब्राह्मण हुए थे और उन्होंने ही सम्पूर्ण जम्बू द्वीप को सात भागों में विभक्त किया था। सत्तभू, ब्रह्मदत्त, वेस्सभू, भरत, रेणु और दो धृतराष्ट्र— उस समय जम्बूद्वीप के ये सात भारत[1] (राजा) थे। पलि अट्ठ-

१. दीघनिकाय २, ६

कथाओं एवं मूल त्रिपिटक से यह भी ज्ञात होता है कि बुद्ध-काल से पूर्व और भारत में जनपद युग के प्रारम्भिक काल में अवन्ति (मध्यभारत) की राजधानी माहिष्मती ही थी। उज्जैन का महत्त्व पीछे बढ़ा। और शिप्रा (क्षिप्रा नदी) तट पर अवस्थित उज्जैन का रमणीक एवं धन-धान्य से सम्पन्न नगर माहिष्मती, का केवल स्थान ही ग्रहण किया प्रत्युत सारे जम्बू द्वीप का महत्त्वपूर्ण एवं वैभव सम्पन्न नगर हो गया। धम्मपदट्ठ[1] कथा से विदित होता है कि बुद्ध-काल से कुछ पूर्व ही अवन्ति जनपद की राजधानी उज्जैन नगर हो गया था। चंड प्रद्योत के पूर्वजों ने इस नगर को अपने वैभव एवं कलापूर्ण प्रासादों से सम्पन्न कर दिया था। चण्ड प्रद्योत के समय में उज्जैन और उसका अंचल प्रदेश बड़ा ही समृद्ध था। चण्ड प्रद्योत अपने शौर्य के कारण अपने जनपद को बाह्य आक्रमणों से सदैव सुरक्षित रखा। एक समय ऐसा था जब कि मगध नरेश बिम्बसार एवं कोशल नरेश प्रसेनजित जैसे पराक्रमी प्रजेश भी चण्ड प्रद्योत के नाम से काँप उठते थे। राजा चण्ड प्रद्योत (पज्जोत) अपने नाम के अनुसार बड़ा ही चंड था। फिर भी उसने अपने समीपवर्ती तथा भारत के सभी छोटे एवं बड़े गण-राज्यों तथा राजतन्त्रों से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखा था।

विनयपिटक[2] के चीवर-स्कन्ध[3] में आये हुए चंड-प्रद्योत के रुग्ण होने के विवरण से उसके स्वभाव एवं आचरण सम्बन्धी कुछ

---

१. धम्मपदट्ठ कथा २, १

२. विनय-पिटक ३, ८ १, १

३. विनय-पिटक ३, ८, ११

वातों का ज्ञान होता है। विनय-पिटक का वर्णन इस प्रकार है—

"राजा प्रद्योत को पांडुरोग हुआ था। बहुत से बड़े बड़े दिगन्त विख्यात वैद्य आकर निरोग न कर सके। बहुत-सा हिरण्य (अशर्फी) लेकर चले गये। तब राजा प्रद्योत ने राजा मगध श्रेणिक बिम्ब-सार के पास दूत भेजा:—

'देव! मुझे ऐसा रोग है। यदि देव! जीवक वैद्य को आज्ञा दें कि वह मेरी चिकित्सा करे तो बड़ा उत्तम हो।'

तब राजा बिम्बसार ने जीवक...को आदेश दिया—"जाओ, भणे जीवक! उज्जैन (उज्जैनी) जाकर, राजा प्रद्योत की चिकित्सा करो।"

'अच्छा, देव!'...कह...जीवक...उज्जैन जाकर, राजा प्रद्योत (पज्जोत) के समीप गया। जाकर प्रद्योत के विकार को पहिचान कर बोला—

"देव! घी पकाता हूँ। उसे पीयें।"

"भणे जीवक! बस, घी के विना और जिससे तुम निरोग कर सको, उसे करो। घी से मुझे अरुचि है।"

तब जीवक के मन में ऐसा विचार हुआ—'इस राजा का रोग ऐसा है कि विना घी के स्वस्थ नहीं किया जा सकता। क्यों न मैं घी को कापाय-वर्ण, काषाय-गंध, काषाय रस से पकाऊँ।' तब जीवक ने नाना औषधों से काषाय-वर्ण, काषाय गंध, कापाय रस घी पकाया। उसके मन में इस प्रकार विचार हुआ—"राजा को घी पीकर पचते समय उलटी होती सी जान पड़ेगी। यह

राजा क्रोधी (चंड) है। मुझे मरवा न डाले। क्यों न मैं पहले से ही ठीक कर लूं।" तव उसने जाकर राजा प्रद्योत से कहा—"देव ! हम लोग वैद्य हैं। विशेष मुहूर्त से मूल उखाड़ते हैं और औषधि संग्रह करते हैं। अच्छा होता, यदि देव ! वाहन-शालाओं और नगर द्वारों पर आज्ञा दे देते कि जीवक जिस वाहन से चाहे उस वाहन से जाये, जिस समय चाहे उस समय जाये, जिस समय चाहे उस समय नगर के भीतर आवे।"

तव राजा प्रद्योत ने वाहनागारों और द्वारों के लिए जीवक के कथनानुसार आज्ञा दे दी। उस समय प्रद्योत की भद्रावतिका नामक हथिनी दिन में ५० योजन चलने वाली थी। जीवक कौमार भृत्य भेषज्य तैयार कर राजा के पास ले गया—"देव ! कषाय पीयें ! तब जीवक राजा को घी पिलाकर हथिसार में जा भद्रावती हथिनी पर सवार हो नगर से निकल पड़ा। तब राजा प्रद्योत को उस पीये हुये घी से उलटी हो आई। राजा प्रद्योत ने अपने आदमियों से कहा—"भणे ! दुष्ट जीवक ने मुझे घी पिलाया है। जीवक वैद्य को ढूंढ़ो।"

"देव ! भद्रावतिका हथिनी पर नगर से वाहर गया है।' उस समय अमनुष्य से उत्पन्न काक नामक राजा प्रद्योत का दास दिन में साठ योजन चलने वाला था। राजा प्रद्योत ने काक को आदेश दिया—

"भणे काक ! जा, जीवक वैद्य को लौटा ला। उससे कहना आचार्य ! राजा तुम्हें लौटाना चाहते हैं।' भणे काक ! यह वैद्य लोग वड़े मायावी होते हैं। उसके हाथ का कुछ मत लेना।"

तब काक ने जीवक कौमार भृत्य को मार्ग में कोशम्बी में जलपान करते देखा। दास काक ने जीवक से कहा—"आचार्य! राजा तुम्हें लौटवाते हैं।"

ठहरो, भणे काक! जब तक खा लूं। हन्त, भणे काक! तुम भी खाओ।"

"बस आचार्य! राजा ने आज्ञा दी है—यह वैद्य लोग बड़े मायावी होते हैं। उसके हाथ का कुछ मत खा लेना।" उस समय जीवक कौमार भृत्य नख से दवा लगा आँवला खाकर पानी पीता था। तब जीवक ने काक से कहा—"तो भणे काक! आँवला खाओ और पानी पीओ।" तब काक दास ने सोचा—"यह वैद्य आँवला खा रहा है, पानी पी रहा है। इसमें कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता।" और आधा आँवला खाया तथा पानी पीया। उसका खाया वह आधा आँवला वहीं वमन हो निकल गया। तब काक जीवक ने कौमार-भृत्य से कहा—"आचार्य क्या मुझे जीना है?"

"भणे काक! डर मत, तू भी निरोग होगा और राजा भी। वह राजा चंड है। मुझे मरवा न डाले इसलिये नहीं लौटूंगा।" कह, भद्रवतिका हथिनी काक को दे, जहाँ राजगृह था वहाँ चल दिया। राजगृह पहुँच कर उसने राजा बिम्बसार से वह सब बात कह डाली।

"भणे जीवक! अच्छा किया जो नहीं लौटा। राजा चंड है तुझे मरवा ही डालता।"

तब राजा प्रद्योत ने निरोग हो जीवक कौमार-भृत्य के पास दूत भेजा—"जीवक आवें। पुरष्कार दूँगा।"

"बस, आर्य ! देव मेरा उपकार याद रखें।" उस समय राजा प्रद्योत को शिवि[1] देश से दुशालों का एक जोड़ा प्राप्त हुआ था। उसने उसे जीवक के लिये भेजा। तब जीवक कौमारभृत्य के मन में यह हुआ--'कि इस दुशाले को अर्हत सम्यक सम्बुद्ध के बिना या राजा मागध श्रेणिक बिम्बसार के बिना दूसरा कोई (उपयोग) करने योग्य नहीं है।' उसने भगवान् के पास जाकर कहा—"भन्ते ! भगवान् पांसुकूलिक हैं (लत्ताधारी हैं)। और भिक्षु संघ भी। भन्ते ! मुझे यह शिवि का दुशाला जोड़ा राजा प्रद्योत ने भेजा है। आप कृपा करके इसे स्वीकार करें। और भिक्षु संघ को गृहस्थों के दिये चीवर की आज्ञा दें।"

उज्जैन का राजा चंड प्रद्योत बड़ा ही शक्तिशाली एवं पराक्रमी नरेश था। उसने वैभव-सम्पन्न तथा हस्तिसेना से सदा संवद्ध रहने वाले कौशम्बी नरेश उदयन को परास्त कर जीवित पकड़वा लिया था और पीछे उसकी पुत्री वासुलदत्ता[2] के साथ उदयन के वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर अवन्ति नरेश और वत्स के राजवंश में दृढ़ मैत्री के सूत्र बँध गये थे। तब से एक दीर्घ काल तक इन दोनों राज्यों में परस्पर सहयोग तथा सद्भावनायें बनी रहीं किन्तु कुछ दिनों के उपरान्त उदयन का सम्पूर्ण वत्स जनपद अवन्ति की राजसत्ता का एक अङ्ग हो गया था और सम्पूर्ण भारत में मगध और अवन्ति जनपद ही महाशक्तियों में

---

१. वर्तमान सीबी—बलोचिस्तान के आस-पास का प्रदेश या शेरकोट पंजाब के आसपास का प्रदेश।

२. इन्हीं का नाम वासवदत्ता भी था।

केन्द्रित हो गये थे। धम्मपदट्ठकथाओं[1] में वर्णित निम्नलिखित कथा इन दोनों राजवंशों एवं जनपदों के वैभव तथा पारस्परिक सम्बन्धों पर पर्याप्त प्रकाश डालती है:—

"उज्जैनी में चंड प्रद्योत नामक राजा राज्य करता था। एक उसने उद्यान में जाते हुए, अपनी सम्पत्ति को देख—'क्या और किसी की ऐसी सम्पत्ति है?' ऐसा मनुष्यों से पूछा।"

"यह क्या सम्पत्ति है? कौशाम्बी में उदयन राजा की सम्पत्ति बहुत बड़ी है।"

"तो मैं उसे ले लूंगा।"

"आप उसे नहीं ले सकते।"

"जो कुछ भी कर के लेंगे।"

"देव आप नहीं ले सकते।"

"क्यों?"

"वह हस्ति-कान्त नामक शिल्प को जानता है। मंत्र को जप कर हस्तिकान्त वीणा को बजाते हुए हाथियों को भगा भी देता है। पकड़ भी लेता है। हस्तिवाहन से युक्त उसके समान दूसरा कोई नहीं है। उसे लिया जा सकता है। देव! यदि आपका यह दृढ़ निश्चय है तो काष्ठ की हस्ति का निर्माण कर उसके समीप के स्थान में भेजिये। वह हस्तिवाहन या अश्ववाहन सुनकर दूर तक भी जाता है। उसे वहाँ आने पर पकड़ा जा सकता है।" राजा ने इसे सुनकर —"यह उपाय है।" सोचा और काष्ठमय यंत्र हस्ति बनवा वाह्य भाग को वस्त्र-खंडों से लपेट, चित्रित कर के उसके राज्य में समीपस्थ स्थान में एक तालाब के

---

१. धम्मपदट्ठ कथा २, १

किनारे छुड़वा दिया। हस्ति के पेट के भीतर साठ पुरुष (सैनिक) इधर-उधर चँक्रमण करते थे। हाथी की लीद को दूर से लाकर इधर-उधर बिखेरते थे। एक वन में विचरण करने वाले पुरुष ने उस हस्ति को देख कर—'यह हमारे राजा के योग्य है।' विचार कर जा राजा से निवेदन किया—"देव! मैंने सर्व-श्वेत कैलाश-शिखर के सदृष्य आप के ही योग्य श्रेष्ठ वारण को देखा है।"

उदयन (उदेन) उसी पुरुष को पथ-प्रदर्शक वनाकर हस्ति पर आरूढ़ हो ससैन्य निकला। उसके आने की बात को जानकर चर पुरुषों ने जाकर चंड प्रद्योत से कहा। वह आकर मध्य भाग को रिक्त कर के दोनों पार्श्वों में सेना को बढ़ाया। उदयन उसके आने की बात को न जानता हुआ हाथी का पीछा किया। भीतर रहनेवाले मनुष्यों ने उसे तीव्रगति से भगाया। काष्ठ-हस्ति, राजा के कहे मंत्र को जपते और वीणा-वादन को अनसुनी करते भागता ही रहा। राजा हस्ति के पास न पहुँच सकने पर घोड़े पर आरूढ़ हो उसका पीछा किया। उसके तीव्र-गति से पीछा करने पर, उसके सैनिक पीछे छूट गये। राजा अकेला हो गया। तब दोनों पार्श्वों पर नियुक्त चंड प्रद्योत के सैनिकों ने उसे पकड़ कर राजा को दिया। तब उसकी सेना शत्रु के हाथ में पड़ जाने की बात को जान बाह्य भाग में पड़ाव डाल दिया। चंड प्रद्योत भी उदयन को जीवित ही पकड़ कर बन्दीगृह में डाल तीन दिनों तक विजयोत्सव मनाया। उदयन ने तीसरे दिन अंग रक्षकों से पूछा—"तात! तुम्हारे राजा कहाँ हैं?"

"मैंने शत्रु पर विजय पाई है ऐसा सोच विजयोत्सव मना रहे हैं।"

उदयन ने उसे सुन—"क्या तुम लोगों के राजा का यह कार्य स्त्रियों के समान नहीं है ? अपने शत्रु को मार डालना या मुक्त करना नहीं चाहिये ? हमें दुख में डाल कर विजयोत्सव मना रहे हैं।"

उन्होंने जाकर उस बात को राजा से कहा। वह आकर —"क्या तूने सचमुच ऐसा कहा है ?" पूछा

"हाँ महाराज !"

"बहुत अच्छा, मैं तुझे मुक्त कर दूँगा। किन्तु क्या अपने मंत्र को मुझे भी दोगे ?"

"बहुत अच्छा, दूँगा। किन्तु आप यह बताइये कि आप मुझे प्रणाम करेंगे ?"

"क्या मैं तुझे प्रणाम करूँगा ? नहीं प्रणाम करूँगा।"

"मैं भी आपको नहीं दूँगा।"

"ऐसा करने पर तुझे दंड दूँगा।"

"दो, आप का मेरे शरीर पर वश है किन्तु मेरे चित्त पर नहीं।

राजा ने उसकी पुरुष गर्जना सुन कैसे मैं इसके मंत्र को ग्रहण करूँगा; विचार कर इस मंत्र को कोई दूसरा नहीं जान सकता, अपनी पुत्री को इसके पास सिखा कर मैं उससे सीख लूंगा। ऐसा सोच उससे कहा—"दूसरे के प्रणाम कर ग्रहण करने पर उसे दोगे ?"

"हाँ, महाराज ?"

"तो मेरे घर में एक कुब्जा है। उसके परदे के भीतर बैठने पर, तुम परदे से बाहर रह कर मंत्र को पढ़ो।"

"अच्छा महाराज ! कुब्जा हो या लंगड़ी, प्रणाम करने पर ही दूँगा ।

तत्पश्चात् राजा ने जाकर अपनी पुत्री वासुलदत्ता से कहा—"पुत्री ! एक कोढ़ी अमूल्य मंत्र को जानता है। वह दूसरे को नहीं बता सकता। तू परदे के भीतर बैठ कर मंत्र सीख। वह परदे से बाहर रह कर तुझे सिखायेगा। तुमसे मैं सीख लूंगा।"

इस प्रकार उसने उनके पारस्परिक मैत्री के भय से पुत्री को कुब्जा और उस दूसरे को कोढ़ी बना कर कहा। वह परदे के भीतर बैठी हुई राजकुमारी को परदे के बाहर रह कर मंत्र सिखलाया। एक दिन बार-बार बोलने पर भी मंत्र पाठ न कर सकने पर उसने कहा—"अरी कुब्जे बड़े मोटे ओठ व गाल वाला तुम्हारा मुख है। ऐसे बोलो।"

राजकुमारी ने क्रोधित होकर कहा—"अरे दुष्ट कोढ़ी ! क्यों ऐसा कह रहा है ? मेरे जैसे ही कुब्जा होती हैं ?"

परदे को उठा कर "तुम कौन हो।" पूछने पर "मैं राजकुमारी वासुलदत्ता हूँ।" कहा। पिता ने तुझसे मुझे बतलाते हुए कुब्जा कहा था और मुझसे तुझे कोढ़ी बतलाया था। उन दोनों ने भी—"तो हम लोगों के प्रणय के भय से कहे होंगे।" सोच कर परदे के भीतर ही परिचय किया। तब से लेकर मंत्र ग्रहण या शिल्प-ग्रहण नहीं हुआ। राजा भी पुत्री से नित्य पूछता था।

"क्या पुत्री ! शिल्प सीखती हो ?"

"हाँ पिता जी ! सीखती हूँ।"

एक दिन उससे उदयन ने कहा--"भद्रे ! स्वामी द्वारा किये जाने वाले काम न तो माता-पिता द्वारा किये जा सकते और न भाई अथवा बहिन द्वारा। यदि मुझे जीवन दोगी तो मैं तुझे पाँच सौ स्त्रियों का समूह देकर अग्र-महिषी का स्थान प्रदान करूँगा।"

"यदि इस वचन के लिय दृढ़ प्रतिज्ञा करोगे तो मैं तुझें जीवन दान दूँगी।"

"भद्रे ! करूँगा।"

"अच्छा, स्वामी !"

वह पिता के पास जा प्रणाम कर एक ओर खड़ी हो गई। तब उसने पूछा--"क्या पुत्री ! शिल्प समाप्त हो गया ?"

"हाँ पिता जी ! शिल्प समाप्त हो गया।"

"तो पुत्री ! क्या बात है ?"

"हम लोगों को एक द्वार एवं एक वाहन मिलना चाहिये।"

"पुत्री ! यह क्या बात है ?"

"पिता जी ! रात्रि में तारों के प्रकाश में मंत्र के उपयुक्त एक औषधि ग्रहण करनी है। इसलिये हम लोगों को समय या असमय में निकलने के लिये एक द्वार और एक वाहन मिलना चाहिये।"

राजा ने "बहुत अच्छा।" कह कर स्वीकार कर लिया।

उन्होंने इच्छानुसार एक द्वार को प्राप्त कर लिया। राजा के पास ५०० वाहन थे। भद्रवतिका नामक एक हथिनी एक दिन में ५० योजन जाती थी। काक नामक दास ६० योजन जाता था। वेलकेशी और मुंजकेशी दो अश्व १०० योजन जाते थे। नालागिरि नामक हाथी १२० योजन।

एक दिन राजा चंड प्रद्योत क्रीड़ा के हेतु निकला। उदयन ने "आज भागना चाहिये।" सोच, बड़े बड़े चमड़े के थैलों को सोने-चाँदी से भर कर हथिनी के पीठ पर रख वासुलदत्ता को ले भाग गया।

नगर के आन्तरिक रक्षकों ने देख कर जा राजा से कहा। तब राजा ने "शीघ्र जाओ! कह कर सेना भेजी। उदयन ने सेना द्वारा पीछा किये जाने की बात जान कार्षापणों के थैले को खोल कर गिराते हुए बिखेर दिया। मनुष्य कार्षापणों को संग्रह कर पुनः दौड़े। उसने फिर सोने के थैले को खोल कर गिरा दिया। उनके स्वर्ण के लोभ में पड़े रहते समय ही बाहर प्रतीक्षा में पड़े हुए अपने स्कंधावार में पहुँच गया। वह आते ही अपनी सेना से घिरा हुआ नगर में प्रवेश किया। वह जा वासुलदत्ता का अभिषेक कर अग्र-महिषी का स्थान प्रदान किया।"[१]

विनय-पिटक[२] में आये हुए प्रत्यान्त देश के वर्णन से ज्ञात होता है कि अवन्ति, जन-पद (मालवा) दक्षिण-पथ में पड़ता था और उसे अवन्ति दक्षिणापथ के नाम से पुकारा जाता था। अवन्ति दक्षिणापथ जनपद मध्यदेश से बाहर प्रत्यान्त जनपद में पड़ता था। वहाँ के लोग महाकात्यायन के धर्मोपदेश से प्रभावित होकर अधिकांशतः बौद्धधर्मानुरागी हो गये किन्तु भिक्षुओं की संख्या बहुत कम थी। महाकात्यायन के शिष्य शोण कुटिकण्ण की उपसम्पदा बड़ी मुश्किल से तीन वर्षों के बाद हो सकी थी और

१. धम्मपदट्ठ कथा २, १

२. विनय पिटक ३, ५, ३, १

जहाँ-तहाँ कर के दस भिक्षु प्राप्त हुए थे। तात्पर्य उस समय अवन्ति जनपद में बहुत थोड़े भिक्षु थे। जिसके लिये बाद में महाकारुणिक भगवान्—को अल्पतर गण से उपसम्पदा की व्यवस्था करनी पड़ी थी।

यद्यपि वहाँ कुछ ऐसें भिक्षु एवं गृहस्थ थे जो बुद्ध शासन में सदा अमर रहेंगे और वर्तमान मध्यभारत ही नहीं अतएव विश्व के श्रद्धालु उपासक उपासिकायें सदा उनके यशःगान करते रहेंगे तथा उनकी कृतियों का मनन कर स्वयं को धन्य समझेंगे और उनकी गुण-गरिमा में अपनी श्रद्धा को परिप्लावितं कर श्रद्धालु जनों में भक्ति रस का संचार करेंगे। अभयकुमार, ऋषिदासी, ऋषिदत्त, शोण कुटिकण्ण, गृहपति हालिद्दिकान और महाकात्यायन जैसी महान विभूतियाँ अवन्ति जनपद रूपी अनन्त आकाश के शान्ति, मैत्री एवं करुणा के अमर सन्देशों को प्रसारित करती रहेंगी। महाकात्यायन उज्जैनी नरेश चंड प्रद्योत के पुरोहित-पुत्र थे। चंड-प्रद्योत को महाकात्यायन ने ही बौद्ध बनाया था। अवंतीश्वर प्रद्योत की कन्या का पुत्र मथुरा नरेश भी महाकात्यायन के उपदेश को सुन कर भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ दिन पश्चात् बौद्ध-धर्म ग्रहण किया था।[1]

भिक्षु ऋषिदत्त अवन्ति जनपद के वेणु ग्राम के रहने वाले थे। अवन्ति जनपद के कुररघर में एक ऊँचा पर्वत था जहाँ पर महाकात्यायन का विहार था। ग्रंथों में उसके महात्म का अनेक स्थलों

---

१. मज्झिम-निकाय २, ४, ४

में वर्णन प्राप्त होता है।[1] यह भी ज्ञातव्य है कि कुररघर का पर्वत, प्रपात से युक्त था।

पालिग्रंथों से विदित होता है कि ग्रवन्ति दक्षिणापथ की भूमि काली (कण्हुत्तरा), कड़ी ग्रौर गोखरू (गो कंटकों) से भरी थी। वहाँ के लोगों को उपानह का पहनना ग्रावश्यक था। इसलिये ग्रवन्ति जनपद के भिक्षुग्रों को भी तथागत ने उपानह की ग्राज्ञा दी थी। ग्रवन्ति जनपद की शिप्रा (क्षिप्रा), चम्बल, नर्मदा, काली सिन्ध, वेत्रवती, ग्रादि सरितायें पुण्यसलिला मानी जाती थीं। जिनमें शिप्रा, नर्मदा, वेत्रवती मुख्य थीं। उज्जैन महान पवित्र तीर्थ स्थान ग्रौर पुण्य नगरी के रूप में प्रख्यात था। ग्रवन्ति जनपद की जनता स्नानप्रेमी थी जिस कारण तथागत को प्रत्यान्त तथा ग्रवन्ति जनपद के भिक्षुग्रों के लिये नित्य स्नान करने के हेतु ग्राज्ञा देनी पड़ी थी। ग्रवन्ति जनपद के लोग उदक से शुद्धि मानने वाले थे।[2] जिस प्रकार मध्यदेश की गंगा; वाहुका, ग्रविक्क, गया, सुन्दरिका, सरस्वती, वाहुंमती, ग्रौर फलगू नदियाँ उदक शुद्धि के हेतु परम पवित्र मानी जाती थीं। उसी प्रकार ग्रवन्ति दक्षिणपथ में शिप्रा, नर्मदा, ग्रौर वेत्रवती सरितायें उदक शुद्धि की केन्द्र मानी जाती थीं। प्रति वर्ष कार्तिक ग्रौर माघ मास में ग्रसंख्य जन-समह इनमें स्नान कर ग्रपने को मक्ति फल का भागी समझता था।

---

१. संयुत्त-निकाय २१, १, १, ३ ग्रौर संयुत्त-निकाय २१, १. १, ४
विनय-पिटक ३, ५, १

२. मज्झिम-निकाय १, १, ७

अवन्ति दक्षिणापथ की राजधानी उज्जैन, गोदावरी तीर से कौशाम्वी होते हुए साकेत एवं श्रावस्ती तक जाने वाले मार्ग में पड़ता था। बावरी की शिष्य परम्परा जब गोदावरी तीर से उत्तरापथ की ओर तथागत के दर्शनार्थ प्रस्थान की थी, तब उन्हें उज्जैन से होकर जाना पड़ा था। सुत्त-निपात के परायणवग्ग[१] में इस प्रकार वर्णन आया है—

"बावरिं अभिवादेवा कत्वा च नं पदक्खिणं ।
जटाजिन धरा सब्बे पक्कामुं उत्तरामुखा ।।
अलकस्स पतिट्ठानं पुरिमं माहिस्सतिं तदा ।
उज्जेनिं चापि गोनदुं वेदिसं वनसह्वयं ।।
कोसम्बिं चापि साकेतं सावत्थिं च पुरुत्तमं ।
सेतव्यं कपिलवत्थुं कुसिनारं च मन्दिरं ।।"

इससे स्पष्ट है कि अश्वक प्रदेश के अलक से चलने के पश्चात् क्रमशः प्रतिष्ठान, माहिष्मती, उज्जैन, गोनद्ध, विदिशा, वन, कौशाम्बी, साकेत, श्रावस्ती, सेतव्य, कपिलवस्तु और कुशीनारा पड़े थे। अश्वक से उज्जैन तक एक महामार्ग आता था और वहाँ से कौशाम्बी की ओर जाता था। मथुरा, सुप्पारक और सत्थवदुपुर से भी उज्जैन के लिए मार्ग आते थे। तात्पर्य अवन्ति दक्षिणपथ चतुर्दिक से आने वाले व्यापारिक मार्गों से सम्बद्ध था तथा दक्षिणापथ में व्यापार का प्रमुख केन्द्र समझा जाता था।

पालि ग्रंथों से यह भी ज्ञात होता है कि अवन्ति दक्षिणापथ के लोग चर्ममय अस्तरण (विछौने) प्रयोग में लाते थे। जिनमें

---

१. सुत्त-निपात ५, १

मेढ चर्म, अज चर्म और मृग चर्म प्रमुख थे इसी हेतु तथागत को भिक्षुओं के हेतु इनकी अनुज्ञा देनी पड़ी थी।[१] बुद्ध काल के पश्चात् समय समय पर बौद्ध-भिक्षुओं एवं राजाओं की निर्मल प्रेरणाओं से मध्यभारत और उसके निकटस्थ प्रदेश बौद्ध उपासक-उपासिकाओं तथा विहारों, स्तूपों और संघारामों से सुशोभित हो गये थे। सम्राट अशोक के समय में मध्य-भारत की वसुन्धरा भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि बौद्ध विचार धारा एवं दार्शनिक दृष्टियों से समुज्ज्वल हो गई थी। सम्पूर्ण जनपद एवं उसके अंचल प्रदेश बौद्ध-कला-कृतियों से परिपूर्ण हो गये थे। एक स्थान से दूसरे स्थान तक, एक नगर से दूसरे नगर तक और एक बौद्ध विहार से दूसरे बौद्ध विहार तक जाने वाले मार्ग तथागत् के पावन संदेशों को सुनाते हुए जनपद के मन को श्रद्धा विभोर करते, स्तम्भों, स्तूपों एवं भिक्षु-आवासों से अलंकृत थे। सम्राट अशोक के समय में मालव भूमि में धर्म की वह अद्भुत धारा प्रवाहित हुई थी जिसमें अवगाहन कर असंख्य प्राणियों ने यह लोक तथा परलोक में अपने जीवन सौख्य को प्राप्त किया। उस विमल धर्म-धारा के चिह्न आज भी मालव-प्रदेश के भूगर्भ में छिपे तथा खंडित नष्टावशेषों के रूप में विद्यमान हैं।

उज्जैनी, महिष्मती, नाथ, कसरावद, धमनार, चम्पावती, तुम्बवन, खेजड़िया भोप, राजपुर, ग्यारसपुर, विदिशा, साँची, आदि अशोक कालीन कला-कृतियों के ज्वलंत दृष्टान्त हैं। इन स्थानों के गौरव में ही मालव प्रदेश (मध्य-भारत) का गौरव निहित है। इन पवित्र स्थानों में जो आज नष्ट-भ्रष्ट पड़े हैं। जिनमें से अधिकांश उपेक्षित

---

१. विनयपिटक ३, ५, ३, १

हैं। बड़े बड़े शासकों, अर्हंतों एवं स्वर्गस्थ देवताओं के पद संचरण हुए हैं। इनकी ईंट, इनके पत्थर और इनके वास्तुकला के समस्त प्रत्याङ्ग श्रद्धालु मालव नर-नारियों की श्रद्धा एवं अर्चनामयी भावनाओं की देन हैं।

उनके परम त्याग, तपस्या एवं भक्ति के उज्ज्वल स्तम्भ हैं। वह दिन कितना मनोरम रहा होगा जब इन पवित्र नष्टावशेषों के भू-भाग पर निर्मित रमणीय विहारों में भिक्षुओं द्वारा सूत्रपाठ होता रहा होगा और उपोसथ के दिन उत्साह, श्रद्धा एवं धर्म से आपूरित जनता इन बौद्ध विहारों की छत्र-छाया में सद्-चरित्र भिक्षुओं के समीप पंचशील एवं अष्टशील को ग्रहण करने के लिये जाती रही होगी। अमावस्या और पूर्णिमा के दिन सावतिन्स भवन के सुधर्मा सभा की भाँति सारा मालव-प्रदेश धर्म श्रवण करता हुआ अपने पुण्य में संलग्न हो धर्म कार्य के प्रति दत्तचित्त रहता होगा। मालव पुत्रों एवं पुत्रियों ने तज्जन्य भावनाओं से प्रेरित होकर महामहेन्द्र एवं संघमित्रा जैसे अपने प्रिय संतति को भी धर्मप्रचारार्थ सुदूर देशों में सदा के लिये प्रेषित करते हुए आल्हाद का अनुभव किया था। विदिशा-कुमारी देवी का त्याग आज भी साँची के पावन खंडहरों से आँका जा सकता है।

विन्ध्य-प्रदेश

प्राचीन चेदि जनपद क्षेत्र के अन्तर्गत ही आधुनिक विन्ध्यप्रदेश अवस्थित है। बुंदेलखंड, वघेलखंड, एवं दशार्ण चेदि जनपद के ही अंग हैं। यह जनपद विन्ध्यपर्वतमाला में नर्मदा के उत्तरकेन, वेत्रवती, दशार्ण एवं सोनभद्र सरिताओं के जल प्रवाह से अभिसिंचित

था। इसकी राजधानी सोत्थिवती नगर था। इसके अन्य प्रसिद्ध नगर सहजात और त्रिपुरी थे। वेदम्म जातक से ज्ञात होता है कि काशी और चेदि के बीच बहुत लुटेरे रहते थे। जेतुत्तर नगर से चेदि जनपद ३० योजन दूर था। सहजात मे आयुष्मान महाचुन्द ने बौद्धधर्म का उपदेश दिया था। यह बौद्धधर्म का एक बड़ा केन्द्र था। इस समय यहाँ के नष्टावशेषों के उत्खनन से इसके प्रमाण तथा प्राचीन कला-कृतियों के भव्य प्रतीक प्राप्त हो चुके हैं। आयुष्मान अभिरुद्ध ने चेदि के प्राचीन वंश मृगदाय में रहते हुए अर्हत्व प्राप्त किया था। सहञ्चनिका भी चेदि जनपद का एक प्रसिद्ध नगर था जहाँ भगवान् बुद्ध गये थे।

वेत्रवती नगर जो वेत्रवती के किनारे बसा था चेदि जनपद में ही पड़ता था।

दर्शार्ण (दसण्ण) प्रदेश भी एक विख्यात् भू-भाग था। जिसका एक कच्छ नगर अपनी गौरव गरिमा के लिये प्रसिद्ध था इस प्रदेश के लोग अरण्य निवासी तथा एकान्त प्रिय थे।

विन्ध्य-प्रदेश में खजुराहो और भिया कुन्ड तथा अरहुत के बौद्ध नष्टावशेष चेदि जनपद की बौद्ध-कला-कृतियों के केन्द्र थे। अरहुत की बौद्ध-कला-कृतियाँ भारत-प्रसिद्ध हैं। प्रस्तर पट्टिकाओं पर उत्कीर्ण जातक कथायें, बोधि सत्वावदान एवं तथागत के जीवन से सम्बद्ध आकृतियाँ भारतीय कला एवं बौद्ध संस्कृति के महानतम प्रतीक हैं। संसार प्रसिद्ध खजुराहो विन्ध्य की रत्नगर्भा भूमि का एक कला-ज्योति खंड है। एक समय था जब विन्ध्यप्रदेश की भूमि कला-कृतियों से परिपूर्ण थीं और यहाँ की जनता त्रिरत्न की उपासक थीं। अशोक

काल में इस प्रदेश की पर्याप्त उन्नति हुई थी। यद्यपि आज विन्ध्य-प्रदेश के बौद्ध अवशेषों के प्रति उपेक्षा ही बढ़ती जा रही है। फिर भी बौद्ध-संस्कृति एवं बौद्ध कला-कृतियों के सर्वाङ्ग तथा पूर्ण अध्ययन के लिये इनका प्रेक्षण अत्यंत अपेक्षित है। पश्चात्य पुरातत्व-विदों ने खजुराहो और भरहुत के महत्व को समझा था और उन्होंने मुक्तकंठ से यहाँ की कला-कृतियों का गुण-गान किया था। यद्यपि आज इन स्थानों के अधिकांश कला-प्रतीक कलकत्ता, नई दिल्ली तथा प्रयाग के संग्राहलयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। तथापि इनकी अवशिष्ट नीवें, दीवारें, मूर्तियाँ, तोरण, वेस्टनी आदि कला-कृतियाँ दर्शन क्षण में ही हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है तथा बौद्ध-कालीन भारत के स्वर्णिम पृष्ठों को खोलकर सामने प्रस्तुत करने लगती है।

विन्ध्य-प्रदेश का वह काल कितना गौरवमय रहा होगा जब सहस्त्रों की संख्या में उपस्थित हो श्रद्धालु उपासिक-उपासिकायें एवं श्रमण इन नष्टावशेषों के स्थल पर सुशोभित पावन विहारों प्रांगण में बैठकर तथागत के गुण-गान करते होंगे। अपनी श्रद्धाञ्जलि बुद्ध-प्रतिमा के श्री चरणों पर समर्पित करते हुए परम आनन्द का अनुभव करते रहे होंगे। क्या ? सम्प्रति हम यह कल्पना कर सकते हैं कि कितने जीवनमुक्त अर्हंतों के पवित्र चरण इस भू-भाग पर पड़े होंगे। और क्या इसकी भी कल्पना की जा सकती है कि कितने (विन्ध्य-प्रदेश के) कुल-पुत्रों ने घर द्वार तथा परिवार के ममत्व को त्याग कर महान त्याग का पथ अपनाया होगा। यथार्थ में विन्ध्यप्रदेश की भूमि तपस्या एवं आध्यात्म भावना की सुन्दर पर्ण-

कुटी है जहाँ यहाँ के सुपुत्रों ने इस लोक तथा परलोक का हित-चिन्तन करते हुए अपना त्यागमय जीवन व्यतीत किया था। यह विन्ध्य की भूमि कितनी धन्य है जहाँ विन्ध्य-पर्वत-मालाओं की छटा तथा कुंज वल्लरियाँ सदा कला-प्रेमियों को नव-प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं। भारत की मेखला सदृश स्थित विन्ध्यमाला के मध्य सुशोभित विन्ध्य-प्रदेश बौद्ध-कला-कृतियों को सँजोये विराजमान है। यहाँ की कला-कृतियों के सौष्ठव एवं निर्माण-विधि के प्रति बौद्ध जगत कृतकृत्य है।

मध्यप्रदेश

मध्य-प्रदेश बौद्धकला-कृतियों का आगार है। प्राचीन बौद्ध-नष्टावशेष मध्यप्रदेश की वसुन्धरा के वक्षस्थल पर बिखरे हुए आज भी हमें बौद्धकाल के स्वर्णिम-युग की स्मृति दिला रहे हैं। इस भू-भाग पर बौद्ध-संस्कृति की ऐसी अमिट छाप पड़ी है जो भारत के उत्थान-पतन के परिवर्तन चक्र में पड़कर भी अचल सी बनी हुई है। रूपनाथ पंचमढ़ी, भद्रावती, तुरतुरिया, रामटेक, अमरावती, पातुर, श्रीपुर, भेड़ाघाट और त्रिपुरी के बौद्ध खंडहर महा-कौशल एवं विदर्भ (मध्यप्रदेश) में बौद्ध-कला-कृतियों के प्रमुख स्थान हैं जिनके दर्शनार्थ चीनी यात्री हुएनसांग आया था और अपने भ्रमण-वृत्तांत में इनका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। मध्यप्रदेश में विस्तृत बौद्ध संस्कृति के प्रतीकों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि बुद्धकाल से लेकर तेरहवीं शताब्दि के आरम्भ तक मध्यप्रदेश में बौद्ध-धर्म व्याप्त था। त्रिपिटक एवं अट्ठकथा ग्रंथों से विदित होता है कि भगवान् बुद्ध के समय में बावरी के शिष्यों तथा अश्वक-नरेश

(जो महाकात्यायन द्वारा प्रवज्जित हो गया था।) की शिष्य परम्परा ने अश्वक, कोशल, विदर्भ आदि प्रदेशों में बौद्धधर्म का प्रचार एवं प्रसार किया था। यही कारण था कि सम्राट अशोक ने धर्म-प्रचारक भिक्षुओं को महाराष्ट्र प्रदेश में भेजा था, अश्वक, महाकोशल एवं विदर्भ में नहीं।

पालि ग्रंथों से यह ज्ञात होता है कि अश्वक और महाकौशल जनपद कभी काशी-राज्य में गिने जाते थे। अश्वक गोदावरी के तीर पर फैला हुआ था। प्राचीन काल में अश्वक की राजधानी पोतन (पैठन) इस दिशा की सब से बड़ी नगरी थी। महागोविन्द सुत्त[1] के अनुसार भारत के सात प्राचीन विभागों में एक बड़े विभाग का वह केन्द्र स्थान था और महाकौशल भी इसी के अन्तर्भूत था।

सम्प्रति मध्यप्रदेश की पहाड़ियों में अनेक भव्य एवं कलापूंर्ण बौद्ध-गुफायें उपलब्ध हुई हैं। वाकाटक और सोमवंशी राजाओं द्वारा निर्मित बौद्ध विहारों, स्तूपों एवं संघारामों के अवशेष तथा उनसे प्राप्त मूर्तियाँ, पात्र, कलात्मक वस्तुयें, मुद्रायें, प्रस्तर खंडों पर उत्कीर्ण कला-कृतियाँ मध्य-प्रदेश में बौद्ध-धर्म के वस्तु, भास्कर्य, एवं कलाक्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं।

इन स्थानों में जिन बौद्ध कला-विदों की बुद्धिमता शिल्पज्ञता एवं श्रद्धा छेनी और प्रस्तर खंडों द्वारा अभिव्यक्त हुई है उन्हें स्मरण कर आज भी भावुकमन उनकी लगन, कार्यपरायणता तथा परिश्रम का अवलोकन कर कृत-कृत्य हो उठता है। एक समय मध्य-प्रदेश बौद्ध उपासक-उपासिकाओं और भिक्षु-भिक्षुणियों के सच्चरित्र

---

१. दीघ-निकाय २, ६

की निर्मल ज्योति से आलोकित था। जिस समय परिवेणों में धर्म-उपदेश होते थे, दार्शनिक वार्तायें होती थीं, श्रद्धा-विभोर दायकों द्वारा संघ को दान अर्पण किये जाते थे तथा मध्य-प्रदेश की गौरवमयी ललनायें और पुण्येक्षु जन समवेत हो धर्म कार्यों में संलग्न होते थे। उस समय धर्म की जो अद्भुत धारा प्रवाहित हुई थी उसका स्मरण कर मध्यप्रदेश के इतिहास का स्वर्णिम युग आँखों में झलक जाता है। उस समय मध्यप्रदेश की भूमि पवित्र सूत्रों, परित्रों एवं मंगल पाठों से गुंजित थी। यद्यपि आज मध्य प्रदेश में बहुत थोड़े बौद्ध हैं तथापि बौद्ध कलाकृतियों के अवशेष भारत के किसी भी भाग की बौद्ध-कला-कृतियों से तुलना में निम्न नहीं है। उनसे दर्शकों को सदैव त्रिरत्न के प्रति श्रद्धा-भावना की प्रेरणा प्राप्त होती है और वह तथागत का स्मरण करते अपने परम त्याग भिक्षु-भिक्षुणियों का यशः गान करते बोल उठता है:—

"बुद्धं सरणं गच्छामि।
धम्मं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।"

—कुमारी विद्या

भगवान् तथागतके चरण कमलानुरागी

हैहयार्णव-रत्न माहिष्मतीश-वंश-प्रदीप

स्वर्गीय

पितामह रामनाथसिंह शायर

की

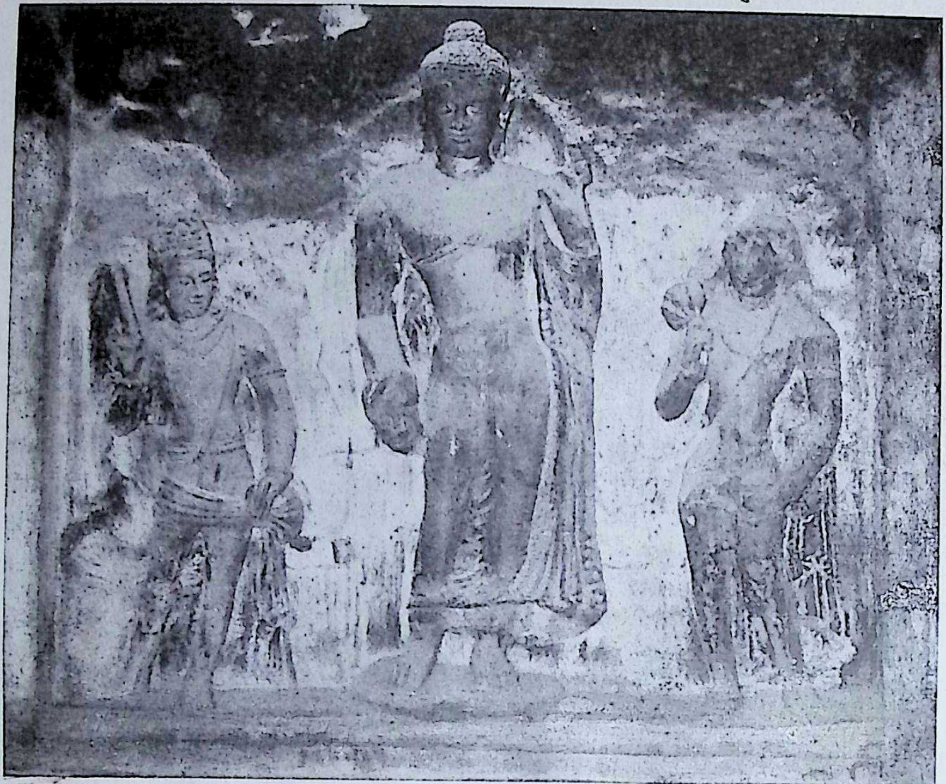
पुण्य स्मृति

में

बुद्ध पूर्णिमा,
२४९९ बुद्धाब्द।

—कुमारी विद्या

बौद्ध कला-कृतियाँ



बाघ गुफा में सेवकों के साथ भगवान् बुद्ध की प्रतिमा

बौद्ध युग और कला

भारत में धर्म, साहित्य एवं कला का अति निकट सम्बन्ध सदा से रहा है। जो साहित्य में पढ़, सुन या मनन कर प्राप्त होता है। वह कला में साकार या पूर्ण रूप से सामने आता है। कला अर्थात् यहाँ पर शिल्पांकन एवं चित्रण की ओर मानव मात्र की स्वाभाविक अभिरुचि होती है। क्योंकि मानव सदैव सुषमा का पुजारी रहा है। प्रत्येक युग अपने साहित्य के साथ कला की अक्षय निधि को आज भी सँजोये है। प्राचीन मूर्तिकला मंजुल भावनाओं को समेटे अतीत की मूर्तिगत स्मृति है। इसी तरह बौद्ध युग भी जहाँ एक ओर पालि साहित्य के भंडार को पूर्ण किया है, वहाँ कला की अक्षय्र निधि को भी लिये हुए है। बौद्ध काल का स्वर्णिम युग सम्राट देवानांप्रिय अशोक के कलिंग विजय के पश्चात् का समय है। जब उनके हिंसा से हाहाकार करते ज्वलित हृदय को भगवान् तथागत की कल्याणी वाणी से शान्ति मिली थी, और उन्होंने उस उपदेश सुधा को "धम्मं संरणं गच्छामि" कहकर वसुधा पर वितरित किया था। शान्ति की उस वेला में कला का पूर्ण विकास हुआ। मंजु मनोहर शिल्पकला और चित्रांकन के उत्कृष्ट प्रतीकों को पा संस्कृति मुस्कुरा उठी। उस विशाल राज्यावधि में अन्तर्राष्ट्रीय कलाकारों का आह्वान हुआ होगा, क्योंकि विशुद्ध भारतीय निर्माण शैली के अतिरिक्त अन्य शैलियों की भी कुछ झलक इन कला कृतियों में दिखाई देती है।

सारनाथ, साँची, अजन्ता, बाघ, भरहुत, अमरावती आदि में मूर्तिकला एवं चित्रांकन आदि के उत्कृष्ट उदाहरण शोभित हैं। सारनाथ के गौरवशाली अशोक स्तम्भ पर निर्मित चतुर्मुखी सिंह मूर्ति और उसके नीचे के वृषभ, अश्व और हाथी की मूर्तियाँ शिल्प कला की अनुपम वस्तुयें हैं। वहाँ ये धार्मिक एवं ऐतिहासिक महत्व से भी पूर्ण हैं। भगवान् बुद्ध के प्रतिमा पार्श्व में निर्मित सिंह-मूर्ति उनके गौरव एवं शान्ति का प्रतीक है। उसी तरह स्तम्भ पर निर्मित शार्दूल भी।

साँची के शिला स्तम्भों, तोरण द्वारों, में भी सीधी तिरछी बंकिम खोदाई द्वारा जातक कथा का अंकन, विभिन्न मुद्राओं में भावनाओं का प्रगटीकरण प्रभावोत्पादक तथा अतीत के कला सौंदर्य से पूर्ण है। बाघिनी (नदी) के पुलीन पर गौरवशाली मालव प्रदेश में महू स्टेशन से संतान्वे मील दूरी पर स्थित बाघ गुफायें जो पाषाणों को काट कर बनाई गई हैं। बीहड़ कान्तार में बौद्ध काल की कला को अंचल में समेटे साधिका सी लीन है। वसंत की वनश्री अरुण पलाश पुष्पों को बिखेर कर मानो उसके अंतर के देवता की अर्चना कर धन्य हो जाती है; और वर्षा की लहराती तरंगों से उनका चरण पखार कर बाघिनी (नदी) संतोष का साँस लेती है। यहाँ की गुफाओं में शिला-भित्तियों पर अंकित पद्म पाणि बोधिसत्व की विभिन्न मुद्रायें जैसे त्याग एवं शान्ति का उपदेश दे रही हैं छठी सातवीं सदी में यह स्थान पावन सूत्रों की मंगल ध्वनि, धूप दीप के सौरभ से पूर्ण कितना उल्लासमय रहा होगा। जब विहारों के हेतु हमारे पूर्वज माहिष्मती नरेश सुबन्धु ने समीप की भूमि के

ग्राम अर्पित करके धन्य माना था। यहाँ के स्तम्भों पर भी खुदाई के उत्कृष्ट कार्य हैं। कहीं कहीं मानव की अन्य भावभंगिमायें भी सुन्दर सफल ढंग से अंकित हैं।

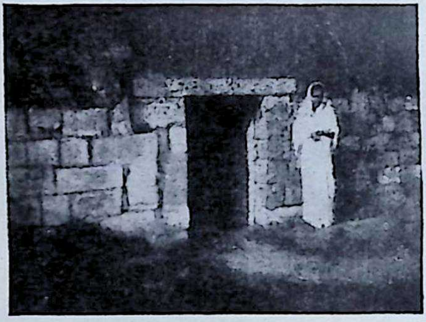
और, दक्षिण भारत का कला निकेतन अजंता तो बौद्ध कला एवं चित्रांकन के अति सुन्दर समन्वय का अनन्य रूप है। महाकारुणिक भगवान तथागत के जीवन काल की घटनायें तो मानों उन कलाकृतियों में साकार हो रही है। पद्म, तड़ाग, पशु, पक्षियों, वृक्षों, पत्र-पुष्पों के चित्रण भी सुन्दर रूप से पृष्ठ भूमि सज्जा के लिये सजाये गये हैं। जो दर्शनीय हैं। जहाँ का कण कण मनोरम कलाकृतियों को लिये हुए शान्ति एवं मैत्री की मृदुल भावनाओं का संदेश दे रहा है।

शिल्पी की हथौड़ी और छेनी से, चित्रकार की तूलिका से विभिन्न मनोरम रंगों से मंजु मुद्राओं में निर्मित व अंकित प्रभावपूर्ण कलाकृतियाँ जिनका विषय करुणा मूर्ति तथागत की जीवन घटनायें व उपदेश है। तथा चित्रण व निर्माण को आदर्श बनाने के हेतु दया, प्रेम, त्याग व ममता मैत्री की पावन प्रेरणा दे रही है। धर्मानुरंजित इन कला प्रतीकों के दर्शन से हृदय श्रद्धा विभोर हो जाता है। बौद्ध युग की सफल कलाराधना अतीत के गौरव के अक्षय भंडार को भर उस युग का और उनके पावन उपदेशों का यशोगान कर रही हैं।

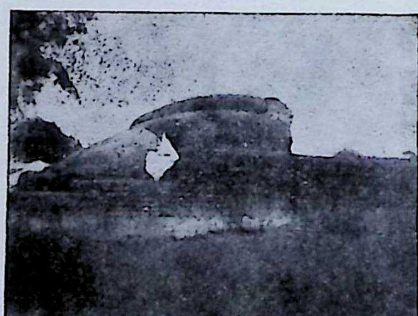
अन्य भी कला कृतियाँ भूमि गर्भ में दबी चिर सुप्त निशानी सी शान्ति पूर्ण पड़ी हैं। आधुनिक उत्खनन कार्य जिन्हें प्रकाश में लाकर स्वर्णिम अतीत के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है।

हाल ही में रेवा (नर्मदा) नदी के तट पर माहिष्मती के समीप बौद्ध कालीन स्तूप का पता लगा है। जिसकी ईंटे २१ इंच लम्बी ११ इंच चौड़ी और तीन इंच मोटी हैं। इन पर अशोक कालीन लिपि में कुछ अंकित है। मृत्तिका के रंग विरंगे पात्र-खंड आदि वहाँ से प्राप्त वस्तुयें मनोरंजन के साथ संस्कृति को बौद्धकालीन कला-राधना की अनुपम निधियाँ प्रदान करेंगी।

बौद्ध कला-कृतियाँ--



उज्जैन की भर्तृहरि गुफा का
प्रवेश द्वार



उज्जैन स्थित स्तूप का एक ध्वंसित भाग

उज्जयिनी

नीरव मृण्मय ढूहो में, सोई शेष कहानी।
आंसू के दो बूँद समर्पित, प्रियदर्शी की रानी ।।

दूर सुदूर तक मालव की शस्य श्यामला धरिणी के मनहर खेतों में जहाँ सलोनी मदभरी अल्हड़ तरुणियों के कजली के स्वर वर्षा की रिमझिम के साथ एकाकार हो जाते हैं। वसंत में आम्र नीम की मंजरियाँ सौरभ बिखेर देती हैं, उज्जयिनी से ४-५ मील दूर ऐसी नीरवता में एक ढूह आज भी कई कथाओं को सँजोये है। ववल के चार पाँच वृक्ष कुछ झाँड़ियाँ पीत पुष्पों को जैसे उनकी अर्चना के हेतु बिखेर देती हैं। यह स्थल है "वैश्या टेकरी"। प्रियदर्शी की वैश्या रानी (विदिशा की श्रेष्ठि कन्या देवी) के नाम पर कई किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं। पर सब का तात्पर्य यही निकलता है कि देवी यहाँ रहती रही हो या अर्चनार्थ आती रही हो।

आज तो केवल मृण्मय ढूह ही अपने अंतर में जाने क्या क्या रहस्य छिपाये खड़ा है। जो पुरातत्व द्वारा उत्खनन के पश्चात् ही प्रकाश में आयेगी। उज्जैन के कोलाहल पूर्ण वातावरण से दूर इस टेकड़ी पर से संध्या की धूमिल वेला से नभ में चमकते नक्षत्रों और उज्जयनि की विद्युन्माला की शोभा बड़ी मनहर एवं मुग्धकारी प्रतीत होती है।

प्रिय दर्शी अशोक जब शासन का प्रथम पाठ पढ़ने उज्जयिनी आये थे तो पुण्यमयी देवी भी उनके साथ आई थीं। यहीं महामहेन्द्र

एवं संघमित्रा का जन्म हुआ था। उस स्वर्ण काल में कितन स्तूप विहार बने होंगे।

जातक, महावस्तु, मज्झिम निकाय, ललित विस्तर में बौद्ध कालीन उज्जयिनी का स्वर्णिम युग झाँक रहा है। भगवान के समय में ही जातक, कथासरित्सार की प्रणयिनी वासवदत्ता के पिता अवंती नरेश चंडप्रद्योत के पुरोहित महाकात्यायन ने त्रिरत्न के उपदेशों से मालव की धरा को धन्य कर दिया था। फिर सम्राट देवानांप्रिय अशोक के युग में उज्जयिनी, विदिशा ही क्या समस्त मालव को पुनः मंगलमय उपदेश सुधा प्राप्त हुई।

मालव की राजधानी उज्जयिनी में देवी का यह स्थान, पुरातत्व, इतिहास एवं धर्म के दृष्टिकोण से दर्शनीय है ही। ऐसी कितनी ही उत्कृष्ट बौद्धकालीन शिल्पकला की वस्तुयें, स्तूप विहारों के अवशेष यहाँ भूमि गर्भ में छिपे पड़े हैं।

"वैश्या टेकरी" से नगर में आने पर महाकाल एवं हरसिद्धि के प्राचीन मंदिर दर्शनीय हैं, वीर विक्रम की आराध्य देवी हरसिद्धि का मन्दिर तान्त्रिकों का सिद्धि पीठ है। कहा जाता है कि यहाँ सती की केहुनी पड़ी है नवरात्रि में इसकी शोभा मुग्धकारी होती है।

मंदिर के समीप "चौबीस खम्भा" नामक महाकाल वन का प्रवेश द्वार हैं जहाँ १२ वीं सदी का अन्हलपट्ठन के राजा का शिला लेख लगा था। इन मंन्दिरों के समीप वनराजि की सुषमा से शोभित शिप्रा का सुन्दर घाट है। कुछ दूर उत्तर की ओर जाने पर मारवाड़ के वीर दुर्गादास की छत्री (समाधि) भी ऐतिहासिक स्थल है।

उत्तर की ओर सरिता तट पर जाने के पश्चात् योगी भर्तृहरि की गुफा है। सुन्दर प्राचीनता की झलक ली हुई। आगे चलकर भैरोगढ़ जेल सम्राट अशोक के समय का वंदीगृह है। उसी ओर ४-५ मील दूरी पर यात्रियों का आकर्षण केन्द्र कालियादाह महल है। पहले यह सूर्यमंदिर था। ४०० वर्ष पूर्व माण्डू के सुलतान नासिरुद्दीन खिजली ने इसे महल के रूप में परिवर्तित कर दिया। अकबर, जहाँगीर, टामसरो ने भी इसका अच्छा वर्णन किया है। वनराजि के अंक में यह शिप्रा तट पर रमणीक स्थान है। ग्वालियर नरेश माधवराव शिंदे ने इसे और सुन्दर बनवाया। यहाँ महल के पास ५२ कुन्डों में शिप्रा का जल इधर उधर वहता है। जो मनोमुग्धकारी है।

इनके अतिरिक्त जयपुर नरेश सवाई जयसिंह का बनवाया हुआ मान-मन्दिर अथवा वेधशाला शिप्रातट पर ऊँचे स्थान पर अवस्थित है।

श्री कृष्ण जी ने शैशव में संदीपन गुरु के समीप बैठ जहाँ शिक्षा पाई थी वह सुरम्य स्थल अंकपात के नाम से जाना जाता है। जहाँ धार नरेश ने एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण करा दिया है। समीप ही एक प्राचीन कुन्ड भी है।

"भर्तृहरि की गुफा" के समीप कवि-कुल-गुरु कालिदास की आराध्य देवी कालिका जी का मंदिर है। यहीं पर पुरातन अवन्ती की अमूल्य निधियाँ भूगर्भ में दबी पड़ी हैं। एक स्थान पर खुदाई कराने से पुरातन सिक्के एवं पात्र प्राप्त हुए हैं। यहाँ शिप्रा तट की झाड़ियाँ बड़ी मनोमुग्धकारिणी हैं।

इनके अतिरिक्त मंगलनाथ, बिना नींव की मसजिद, प्राच. छतरियाँ, योगेश्वर टेकरी, आदि अनेकानेक स्थल हैं।

उज्जैनी में आज वीर सम्राट प्रद्योत, धर्म संदेश गुंजित करने वाले कात्यायन, सम्राट देवानांप्रिय अशोक, व उनकी महारानी पुन्य-मयी देवी तथा विक्रमादित्य एवं कालिदास के समय का वैभव नहीं, जब धवल स्फटिक के सुषमाशाली राजनिकेतनो से कंकण-किंकिणियों की स्वर लहरियाँ कल्पनातीत वैभव को साकार करती थीं। गृह-गृह में अर्चन-वन्दन के स्वर धार्मिक भावना व शान्ति का संदेश देते थे। कंज कलिकाओं सी सुकुमारियाँ मेघ हास पर लहराती शिप्रा की उर्मिल उर्मियों से क्रीड़ा करती थीं। अगरु धूम्र से धवल श्याम सुरभित समीर के साथ त्रिरत्न के उपदेश गुंजित होते थे। मालव की राजधानी भगवान् के कल्याणकारी उपदेशों में विभोर थी।

किन्तु, आज भी बौद्धकाल की चिरसुप्त निशानियों को संजोई प्राचीन उज्जयिनी वनराजी के मनहर अंक में शिप्रा की मूक लहरियों से विश्वदेव की अर्चना करती पावनशील पालन की प्रेरणा प्रदान करती है, और भावुक मन उस सुषमा को निहार कर गुनगुना उठता है।......

जयति जयति भुवि भारत मध्ये, सुखदो मालव देशः।
तरुवर राजि विराजित कुसुमित, शोषित सुन्दर वेशः॥

बौद्ध कला-कृतियाँ—



महेश्वर-घाट

माहिष्मती

माहिष्मती विदिशा ह्यवन्ति, धारा दशपुर ग्रामैः ।
हर्षाऽशोक भर्तृहरि-विक्रम-भोज नृपैरभिरामैः ।।
सुजल सुफल शुभ शस्य भूषित विमलं यत्परिधानम्, ।
प्रकृति शुषमया पूरित मभितो, जन रंजन संस्थानम् ।।

प्राकृतिक अंचल में सौन्दर्य शालिनी निर्मला नर्मदा (रेवा) एवं मनोहारिणी महेश्वरी सरिताओं से द्वीप सी वनी सुन्दर नगरी माहिष्मति वर्तमान माहेश्वर युग-युग की संस्कृतियों को सँजोई कितने ही उत्थान पतन को देख चुकी है। उक्त सरिताओं ने नगर को कई भागों में विभक्त कर दिया है। जहाँ उच्च स्थलों पर जन समह भी निवास करता है।

इस ऐतिहासिक नगरी को माहिष्मान नामक नरेश ने बसाया था। प्रसिद्ध (हैहय) क्षत्रिय नरेश कार्तिवीर्य अर्जुन ने नागवंशी राजाओं को पराजित कर माहिष्मती में अपनी राजधानी बनाई, इन्हें ही अत्यन्त पराक्रमशाली होने के कारण सहस्रबाहु की उपाधि थी। भार्गव परशुराम से युद्ध के पश्चात हैहय शक्ति का दास हुआ, और माहिष्मती का महत्व घटता गया।

कालान्तर में पुनः अवन्ती-नरेश चंड प्रद्योत के समय में माहिष्मती का वैभव चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। भगवान की कल्याणी वाणी को उनके शुभ जीवन काल में ही महाकात्यायन ने मालव प्रदेश में प्रसारित किया, और तत्कालीन माहिष्मती के क्षत्रीय नरेशों ने

त्रिरत्न की शरण में जा अपने को धन्य माना। सुख, शान्ति, समृद्धि वृद्धि की लहरियों से यह महान नगरी पुनः विभोर हो गई। इसी राजवंश में छठवीं शताब्दि में हमारे पूर्वज विख्यात नरेश सुबंधु हुये, जिन्होंने बौद्ध कालीन कला के प्रतीक वाद्य की गुफाओं में निवास कर, जन-जन को उपदेश सुधा वितरित करने वाले पूज्य भिक्षुओं के निर्वाहार्थ समीपस्थ भू-भाग को अर्पित किया था, और मंगल-मय उपदेशों का पालन करते हुये अपने जीवन को धन्य माना था।

बौद्ध काल की इस स्वर्णिम राजधानी के साथ विदुषी भारती (मंडन मिश्र की पत्नी) की कथा नारी-जाति को गौरवान्वित करती है। जिसने दिग्विजय की आकांक्षा रखने वाले विद्वान शंकराचार्य को शास्त्रार्थ में पराजित कर इतिहास में अनुपम उदाहरण रखा। तत्पश्चात् रानी अहिल्या होलकर भी माहिष्मती के साथ सदैव याद रहेंगी।

केवल इतिहास ही नहीं, पुरातत्व एवं धर्म की दृष्टि से भी यह नगरी आकर्पक है। दिसम्बर सन् ५२ से मार्च सन् ५३ तक राजकीय आदेशानुसार माहेश्वर एवं समीपस्थ चार टीलों में विभिन्न स्थानों पर खोदाई के पश्चात् ढाई हजार वर्ष पूर्व की संस्कृति की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। धरातल से १०० फीट की गहराई पर तीस फीट मोटे पीले रेत से ढंके हुए छोटे हथियार, कुल्हाड़ी, गड़ासे, जैसे औजारों के खंड प्राप्त हुये, इन पर जमी हुई बालुका राशि सीमेन्ट की भाँति है। इन वस्तुओं के आधार पर विदित होता है कि तब

बौद्ध कला-कृतियाँ--



महेश्वर स्थित नर्मदा की सहस्रधारा

नर्मदा दो मील चौड़ी रही होगी। वर्षा की कमी के कारण धीरे-धीरे धारा सिमटती गई।

पीली बालुका राशि को आच्छादित की हुई काली मिट्टी में कीलें, नुकीली, एवं खुरपी सी तीक्ष्ण धार वाली वस्तुएँ प्राप्त हुईं ये हथियार सूर्यकान्त तथा सुलेमानी प्रस्तर से निर्मित है। जो स्फटिक की भाँति उज्ज्वल एवं चमकीले हैं। इन विकसित युग के परिचायक शस्त्रास्त्रों से मानवों की नगरी आदि में निवास की बात स्पष्ट होती है। लगभग २० फीट की गहराई में चमकते पाषाणों के चाकू विभिन्न रंगों के मृत्तिका पात्र सुन्दर माला के मन के प्राप्त हुये हैं। पात्रों के गिलास तश्तरियों पर श्वेत, अरुण पृष्ठभूमि पर काले रंग से प्राणियों एवं मानव चित्रों को अंकित किया गया है। हथियारों के फल, अस्थियों व लकड़ियों व कुशलतापूर्वक बनाये गये हैं। राजदंड का शीर्ष भाग, पत्थर की गेंदे अति सभ्यता की द्योतक है।

तीसरी संस्कृति का अंतिम भाग बौद्ध कालीन श्रेष्ठ संस्कृति काल का परिचायक है। माहेश्वर एवं समीपस्थ टीला नर्वदा टोली के उत्खनन से प्राप्त सूर्यकान्त, नील मणि, पीत एवं अरुण पाषाणों के मनके तत्कालीन श्रृंगार उपकरण की अनुपम वस्तुयें हैं। सीलें, मुद्रायें, मुहरें, विभिन्न कलात्मक पूर्ण चित्रित मृत्तिका पात्र जलकलश, चषक, तश्तरियाँ, काली भूरी, रजत रौगन से शोभित हैं। ऐसी वस्तुयें उज्जैनी से कुमारी अंतरीप तक पाई गई हैं। भवन निर्माण के हेतु सुदृढ़ ईंटों का प्रयोग होता था और प्राचीरों तथा स्तम्भों पर सुन्दर अंकन भी। नवदाटोली के ८५ फीट व्यास के

ध्वंसावशेष इसके प्रमाण हैं। माहेश्वर एवं इन समीपस्थ स्थानों से प्राप्त पात्रादि पर कमल, वृषभ का मनोरम अंकन है।

प्रतीत होता है रेवा नदी के भारी बाढ़ से स्तूप व नगर नष्ट-प्राय हुये। जो माहेश्वर के मध्य विशाल जलाशय से प्रकट होता है। माहेश्वर में मिले वहाँ निर्मित होने वाले चमकदार मृत्तिका के मदिरा पात्र, सुराहियाँ तत्कालीन कला प्रियता तथा वैभव की द्योतक हैं। रेवा के पुलिन प्रदेश में माहिष्मती और निकट ग्रामों में प्राप्त इन निधियों से प्रमाणित होता है कि त्रिरत्न की शरण में मंगलमय-पथ का अनुशरण करती जनता यहाँ वहुत बड़ी संख्या में थी। तव इस विशाल स्तूप की भाँति वहुत से स्तूप विहारों से यह स्थली शोभित थी। किन्तु अब भूगर्भ से प्राप्त पुरातत्व की निधियाँ अतीत के वैभव की शेष कथायें कहती हैं, साथ ही यह प्राग ऐतिहासिक, वौद्ध स्वर्णिम युग के उल्लास की घड़ियाँ देखी हुई नगरी उस भावी की ओर निहार रही है। जब सष्ट संगायन से वरदान स्वरूप पुनः देश देशान्तर करुण मैत्री के जयगान से गुंजित हो उठेंगे और यह भी अपने अतीत के वैभव को साकार रूप में प्राप्त कर सकेगी।

पूर्ण होगी कल्पनायें
रच नये आख्यान मनहर

× × ×

युग वर्ष वीतेंगे ही सत्वर

कसरावद

कलकल निनादिनी रेवा के पुलिन पर स्थित (माहेश्वर) (प्राचीन) माहिष्मति जो बौद्ध काल में अपने वैभव गौरव के साथ मुस्कुरा रही थी। त्रिरत्न की उपदेश सुधा में विभोर थी। अतल गहराई पूर्ण सुनील जलराशि वाली रेवा नदी (नर्मदा) के तट पर जहाँ नवदा टोली नामक प्राचीन प्रसिद्ध स्थान है जहाँ स्वर्णिम युग के सुन्दर विहार व स्तूपों के अवशेष प्राप्त हुये हैं, वहाँ की सुन्दर ईंटें, मृत्तिका पात्र भक्ति भावना एवं कला के प्रतीक बने पुरातत्व प्रेमियों के आकर्षण के केन्द्र हैं। इसी माहेश्वर की विरुद्ध दिशा में अर्थात् रेवा के दूसरे तट पर कसरावद ग्राम के समीप प्राचीन स्तूपों के तथा विहारों के ध्वंसावशेष आज भी अतीत की स्मृतियों को संजो रहे हैं।

कसरावद, तरुवर राजि विराजित शोभित सुखदायिनी मालव धरा पर स्थित एक ग्राम है। महामालव (आधुनिक मध्य भारत) के निगाड़ जिले में रेवा के दूसरे तट पर कुछ दक्षिण की ओर विद्यमान है। आगरा बाम्बे रोड पर अवस्थित जुलपानिया ग्राम में बस द्वारा 'खरगोन' कस्बा जाना पड़ता है। कसरावद जो कि कसरावद तहसील का ही सदर मुकाम है; खरगोन से वहाँ पब्लिक बसों द्वारा पहुँचते हैं।

दूसरा पथ मध्यभारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी इंदौर से मंडलेश्वर तक बस द्वारा जा, फिर नर्मदा को पार कर कसरावद

पहुँच सकते हैं, किन्तु नदी का पार करना सुविधा जनक नहीं है।

कसरावद ग्राम के आसपास के क्षेत्र में मनहर वन्य प्रान्त में आम्र, बबूल के बौर व पीत-पुष्प, मल्लव अपनी शोभा से विभिन्न ऋतुओं में सौरभ, एवं सुषमा प्रदान करते हैं। वसंत में पीली सरसों से खेलती, वर्षा में कजली की धुन पर बल खाती मालव तरुणियाँ गीतों की गुनगुनाहट, और यत्र तत्र बिखरे स्तूप विहारों के कला पूर्ण ध्वंसावशेष एक कसक के साथ भावुक मन को अतीत की स्मृतियों में विभोर कर देते हैं। जब झीनी साड़ियों की नगरी माहिष्मती के समीप कसरावद भी अपने वैभव के युग देखा होगा। आज जहाँ धरा पर एकाकार होते भूमिगर्भ में अतीत कालीन कला संस्कृति अनुपम वस्तुओं को समेटे भग्नावशेष, स्तम्भों के टुकड़े, तोरण ईंटों के रूप में बिखरे पड़े हैं। वहाँ सम्राट देवानांप्रिय अशोक के स्वर्णिम युग में विहारों के पावन जीवन व्यतीत करते कापायधारी पूज्य भिक्षुगण जन जन में भगवान की उपदेश सुधा को वितरित करते रहे होंगे, तथा शीलों का अनुशीलन कर प्राणीमात्र सुखी थे। आज भी रंग विरंगे विहगों के साथ कोकिला का मधुर तान मधु ऋतु में प्रतिध्वनित हो उस शान्त कानन अंचल में जैसे शील पालन की प्रेरणा करता है।

यहाँ पुलीन स्थित पावन ध्वंसावशेष पुरातत्व की दृष्टि से ही दर्शनीय नहीं किन्तु इतिहास व प्रकृति प्रेम तथा धर्म भावना से भी हैं।

कलाकेन्द्र-धमनार की गुफायें

परिवर्तन के श्याम घनों के बीच कभी कभी मंजु रश्मियों सी अतीत की वैभवमयी कहानी नवयुग में चमक उठती है। और कला की भव्य धूमिल कृतियाँ साकार हो उठती हैं। भूली कहानियाँ कल्पना के रजत हेम पंखों पर उड़ वरदान सी श्रद्धामय हो, उल्लास, कसक, माधुर्य भर देती हैं। कलाकार की अभिलाषा, श्रद्धा भावना तूलिका द्वारा अरुण, पीत, हरित आदि मनोरम रंगों और छेनी हथौड़ी के सहारे चित्र फलक एवं पाषाणों पर मूर्तिमंत हो जाती है। तभी चित्रित भाषा अमात्व का अधिकार चाहती, आज भी गिरी निकुंज की नीरवता में मौन खड़ी है। चंचल चर्मण्यवती, शीतल शिप्रा, विमल वेत्रवती की मंजुल उर्मिल वारि तरंगों से परिप्लावित महामालव प्रदेश में नाग, असुर और वौद्धकाल के अनेक राजाओं की क्रीड़ाभूमि में आज भी अतीत का गौरव झाँक रहा है, वहाँ के नर्मदा तक के उत्खनन कार्य में ८५ फीट व्यास के स्तूप के ध्वंसावशेष और मृत्तिका पात्रों से हमें वौद्धकाल के उच्चतम कौशल के दर्शन होते हैं।

उसी तरह इस प्रदेश के मंदसौर जिले में पश्चिमी रेलवे के नागदा मथुरा लाइन पर स्थित श्यामगढ़ स्टेशन से तेरह मील की दूरी पर नीरव कान्तार के मध्य तीन मील की परिधि में पहाड़ी के शान्त और एकान्त वातावरण में भावना की तरंगों, कलाराधना की रेखाओं को समेटे धमनार की साठ सत्तर गुफायें रंगों की भाषा में अभि-

व्यंजित बौद्ध युग के स्वर्णिम अतीत का यशोगान कर रही हैं। उस काल की डेढ़ सौ गुफाओं में अब केवल चौदह ही महत्व पूर्ण रह गई हैं। यहाँ के मुख्य गह्वर में करुणा एवं मैत्री के प्रतीक भगवान तथागत की भव्य एवं विशाल प्रतिमा सिंहासन पर आसीन है। जिनकी उपदेशमयी मुद्रायें आज भी प्राणि मात्र को शान्ति का संदेश दे रही हैं। इस मंजुल मूर्ति के चारों ओर प्राचीरों पर अवतरण, महाभिनिष्क्रमण, मारविजय आदि की दिव्य कथाओं के मनोरम चित्र नील गगन के नक्षत्रों की भाँति अद्भुत आकर्षण लिये हुये अतीत को प्रतिविम्बित कर रहे हैं। इससे लगी हुई गुफाओं में चैत्य एवं विहारों की विचित्र एकता है, कितनी ही भावपूर्ण मूर्तियाँ भावनाओं को मुखरित करती कानन के अंचल में मौन पड़ी हैं।

श्रावण संध्या की मनोरम चित्रमयी उस शोभा स्थली में कभी प्रदीपों की झिलमिल आभा, धूप की श्याम लहरियों के बीच, वंदना के स्वर गुंजित होते रहे होंगे। मंगलमय उपदेशों में पावन मधुरिमा निखर जाती रही होगी। आज भी वहाँ उस विश्व वन्दित देवता की भव्य मूर्ति के चरणों में वनश्री सद्यःकुसुमित सुरभित प्रसूनों की अंजलि समर्पित कर धन्य हो जाती है। तब मानो जीवन को मंगल मय पथ की ओर प्रेरित करती समीर लहरी गुनगुना उठती है...

"भवतु सव्व मंगलं!!"

चम्पावती

वैदिक, बौद्ध, जैन संस्कृति की अनुपम वस्तुओं को धारण की मालव की सुषमा शालिनी प्रकृति के अंक में चम्पावती नगरी धूल धूसरित पड़ी है। इसके अंचल में कितनी ही कला पूर्ण प्रतिमायें बिखरी पड़ी हैं। आम्र-वनों की सघन छाया, मंजरियों की मधुर गंध और उसके कोकिला की मीठी तानमयी वासंती वनश्री मानव को मुग्ध बना लेती है। इस ग्राम के मध्य में बहने वाला नाला (प्राचीन सोमवती नामक छोटी सरिता) जो प्रायः सूखता नहीं अपने कगार पर हरियाली एवं विविध जल पुष्पों से विगत वैभव शालिनी नगरी की अर्चना करता सुरम्य प्रतीत होता है। ग्राम से दो मील पर प्राची की ओर एक छोटा-सा पहाड़ी निर्झर का जल सदैव झरता रहता है।

इस शोभाशालिनी नगरी के साथ अनेकानेक किम्वदंतियाँ सम्मिलित हैं। किन्तु सबका तात्पर्य है कि यह आर्यावर्त के गौरव के प्रतीक वीर विक्रमादित्य के पिता महाराज गंधर्वसेन की राजधानी थी वहाँ वे उज्जयिनी आने के पूर्व तक अपनी राजमहिषी के साथ रहे। तत्पश्चात् उज्जयिनी में वीर विक्रम का जन्म हुआ। उन्ही के कारण इसे गंधर्व नगरी भी कहा जाता था जो अब अपभ्रंश रूप में गंधावल ग्राम के नाम से मालव में प्रसिद्ध है। मध्य भारत के देवास जिले में देवास से भोपाल जाने वाले रास्ते पर सोनकच्छ नामक ग्राम से ६ मील दूर नीरव कान्तार में यह स्थित है। सोन-

कच्छ से गंधावल तक रास्ता बीहड़ है। ग्राम के समीप कई मन्दिरों के ध्वंसाविशेष हैं। इन देवालयों में लोग विविन्न देव मूर्तियाँ भी रख लिये हैं। इस क्षेत्र में भगवान् बुद्ध की कई मूर्तियाँ भी प्राप्त हैं, जो विभिन्न मुद्राओं में है। साथ ही कलापूर्ण भी। एक मन्दिर माता जी के मन्दिर के नाम से विख्यात है जहाँ अनेक मूर्तियों को संजोकर प्रस्थापित कर दिया गया है। ये पावन प्रतिमायें धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं ही, साथ ही ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी। तत्कालीन वेश-विन्यास एवं कला साधना का मनोहारी रूप इन विग्रहों में आज भी विद्यमान है। काश ! इन पुरातत्व एवं कला की अनुपम अज्ञात निधियों की रक्षा होती रहे ताकि परिवर्तनशील समय के साथ आने वाले शुभ अवसर पर दूर सुदूर के मानव भी अपनी श्रद्धा अर्पित कर सकें।

इन ध्वंसावशेषों को देखकर उस अतीत की स्मृति जाग उठती हैं जब श्रद्धालु कलाकारों ने अपने हृदय की समस्त श्रद्धा को सँजोकर प्रस्तर खंडो पर छेनी हथौड़े के सहारे अपने आराध्य देव के पुनीत रूप को साकार करने का प्रयत्न किया था, कमनीयता तथा सुषमा को मूर्त रूप देने की साधना में अपने को धन्य माना था। विश्वदेव की उन गम्भीर कल्याण पथ प्रदर्शिनी पावन प्रतिमाओं के श्री चरणों के समीप श्रद्धानत, त्यागशील काषायधारी भिक्षुओं ने अर्चना वन्दना की सुमधुर ध्वनियों के बीच अगरुधूम की श्याम लहरियों से सुवासित वातावरण में त्रिरत्न की कल्याणकारी उपदेश सुधा को वरदान रूप में प्रदान किया होगा और चम्पावती अपने भाग्य पर गर्व करती शत-शत शोभा के साथ आलोकित हुईं होगी।

आज भी उन पुनीत विग्रह को रिमझिम मल्हार के स्वर गाती वर्षा सरिता के रूप में अर्घ्य चढ़ाती है। आम्र मंजरियाँ मधुर गंध लुटाती समर्पित हो जाती हैं, और हरे भरे पल्लव पुष्पों के परिधान से शोभित चम्पावती मानों उनके चरणों पर सिर झुका साधिका सी लीन हो जाती है। इस सुषमामयी नगरी में जहाँ इतने कलात्मक विग्रह हैं, न जाने कितनी पुरातत्व की निधियाँ अशेष कथाओं को लिये भूमिगर्भ में छिपी पड़ी है। उत्खनन के पश्चात् इस नगरी के ध्वंस कोट (सीमा प्राचीर) के अंतर्गत क्षेत्र में अतीत की कितनी ही कला कृतियाँ, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक वस्तुयें यहाँ प्राप्त होंगी, जो अज्ञात हैं।

उर्वशी के तट पर

कला और साहित्य के अक्षय भण्डार से पूर्ण बौद्ध काल के श्रद्धामय भव्य प्रतीक आज भी गर्व से अवस्थित स्वर्णिम युग के शान्तिमय स्वर्गिक संदेश को प्रसारित कर मंगलमय पथ की ओर प्रेरित कर रहे हैं। एक समय था जब सम्राट देवानांप्रिय अशोक त्रिरत्न की शरण में जा शान्तिलाभ किये थे और पाये थे अपनी आकांक्षा से अधिक। वे चाहते थे विश्व विजयी बनें, मानव मात्र पर विजय प्राप्त कर, किन्तु भगवान तथागत की कल्याणी वाणी को अपनाकर उन्होंनें प्राणिमात्र के हृदय में स्थान बना लिया। इसी काल में उन्होंने अनेक स्तूप, विहार, स्तम्भ, शिलालेख, और जनहित की वस्तुओं का निर्माण कराया। उन्होंने उस महा-मालव प्रदेश में शासन का प्रथम पाठ पढ़ा था। जहाँ उनका वीर हृदय प्रणयिनी विदिशा-कुमारी देवी के स्नेह से अनुरंजित हो गया था और उन्होंने अपने प्रिय पुत्र-पुत्री महेन्द्र एवं संघमित्रा को धर्म की शरण में अर्पित किया था। उन्हीं सम्राट के नाम पर बीना कोटा लाइन पर स्थित एक स्टेशन का नाम "अशोक-नगर" रखा गया है।

इस 'अशोक-नगर' नाम के साथ कितनी संस्कृतियों की स्मृतियाँ सजीव हो उठती हैं। कल्पना के स्वर्ण-रजत पंखों पर उड़ कर अतीत साकार होने लगता है। इस अशोक नगर से ६ मील दक्षिण की ओर तुम्बवन के ध्वंसावशेष तुमेन के नाम से अतीत के गौरव की याद, मूर्ति-कला की सुषमा, कितने ही राजवंशों की

बौद्ध कला-कृतियाँ—



तुम्बेन से प्राप्त कुछ भव्य प्रतिमायें

उत्थान पतन की कहानियों को, कितने ही हर्ष, उल्लास, कसक और श्रद्धा की निशानियों को अपने अंचल में समेटे मौन पड़ा है।

सम्राट देवानांप्रिय अशोक के शासन काल में, उस स्वर्णिम युग में यह नगर तुम्बवन मंजुल, धवल धौत हर्म्यों से पूर्ण अनुपम शोभामय था। उत्तराखंड से गौरव शालिनी उज्जैनी के पथ पर व्यापार का एक उत्तम केन्द्र समृद्धि वृद्धि के साथ उस युग का यशोगान कर रहा था जब कि मालव प्रदेश सुख शान्ति का आगार था। चंचल उर्मिल उर्वशी नदी के पुलीन पर तीन मील के क्षेत्र में स्थित इस नगर के गृह गृह में अर्चना, वंदना, संगीत निगुन्जन से उल्लास विखरता था। कंकण किंकिणियों की रणित ध्वनित स्वर लहरी के साथ वन्दना के हेतु जाती सुकुमारियों की श्रद्धा से तुम्बवन का कण-कण मधुरिमा से व्याप्त हो जाता था।

उस कंचन महलों की नगरी में वैभव के साथ करुणा एवं मैत्री के प्रतीक भगवान् तथागत की उपदेश सुधा भी मंगलमयी सरसता प्रदान करती थी। पूर्णिमा की रजत किरणों के बीच स्वर्ण प्रदीपों की स्वर्णिम आभा से आलोकित विहार के प्रांगण में त्रिरत्न वंदना के पावन स्वर, अर्चना के गीत गुंजित होते रहे होंगे। जहाँ आज भी एक ही शिला की कलामयी चतुष्पदी मनोरम चौकी पर बनी भगवान् तथागत की दस फीट ऊँची छ फीट चौड़ी विशाल एवं भव्य प्रतिमा ध्यान मुद्रा में अवस्थित करुणा, मैत्री एवं शान्ति की पावन प्रेरणा दे रही है। कमल, पत्र पुष्पों एवं मानव की विभिन्न मुद्राओं का अंकन पृष्ठ-भूमि सज्जा के लिये बनाया जाकर शिल्प सौन्दर्य की उत्कृष्ट वस्तुयें अर्पित की गई हैं। समीप ही महामाया विन्ध्य-

वासिनी का मन्दिर प्राचीरों एवं स्तम्भों पर प्रणयकला के अनुपम चित्रण को लिये खड़ा है। यह मंदिर अति प्राचीन है। देवी की मूर्ति भी सौम्य एवं वहुत समय पूर्व की है।

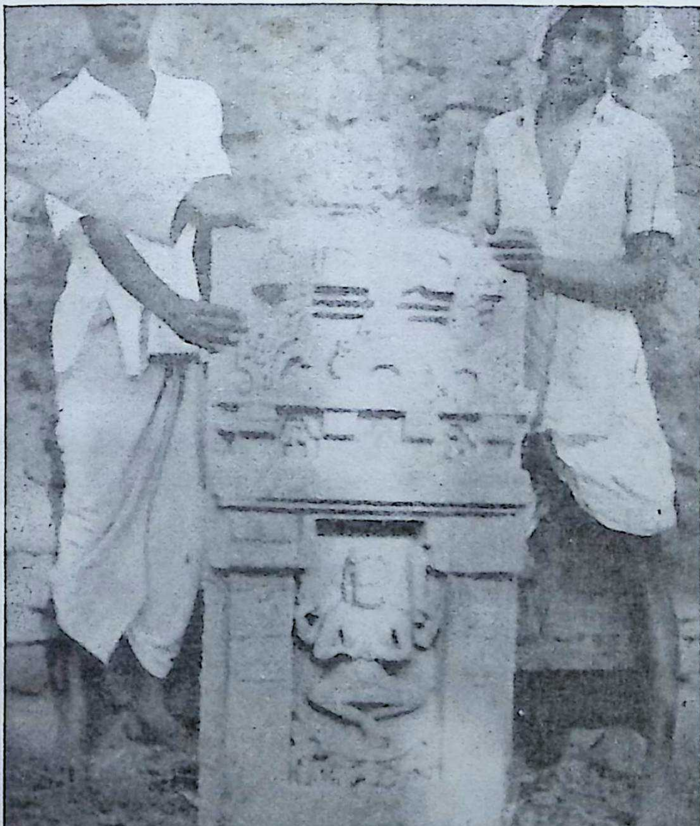
......इस तीन मील के क्षेत्र में कुँआ, वावड़ी, भव्य भवनों के अवशेष एवं भावमयी मूर्तियाँ यत्रतत्र बिखरी अतीत के वैभव गौरव के आख्यान को दुहरा रही हैं।

अब वहाँ की मंजुल हरित धरणी पर प्रासाद, राजपथ, वीणा, मृदंगनिनाद उल्लास हास, कल कूजन नहीं है किन्तु आज भी शरद चन्द्र की मृदुल चाँदनी अपनी मधुरिमा विखेर कर उर्वशी के तट पर स्थित विश्वदेवता (भगवान् तथागत) की अर्चना में आलोकित रहती है। अरुण उषा की चमक द्युति में समीर लहरी मृदुल-मृदुल शत-शत सुरभित सुमनों को उनकी भव्य प्रतिमा के चरणों में बिखेर कर धन्य हो जाती है। प्रकृति वनमाला सी शोभित हो वन्दना करती है, और कोकिला कूक पड़ती है। आसाढ़ सावन के सजल मेघ जब झुक जाते हैं तव उर्वशी जल से उन्हें अर्घ्य देती है, और भावुक मन कल्पना के पंखों में उड़कर अतीत की स्मृतियों को साकार पा, नीरव शान्त वातावरण में श्रद्धा से नत हो जाता है। हृदय किसी कविता की इन पंक्तियों के साथ मानों गुनगुना उठता है—

विभा विहंगम के स्वर भरते, प्रातः महिमा कूंजित।
भग्न खंडहरों की रानी तुम, अब भी लगती पुंजित।

वसंत की माधवी ऋतु में होने वाला मेला प्रतिवर्ष आकर उर्वशी तट के उस स्वर्णिम युग की याद दिला जाता है।

बौद्ध कला-कृतियाँ--



तुम्वेन से प्राप्त बुद्धमूर्ति सहित एक कलाकृति

पारा के पुलिन पर

प्रकृति के मनोरम अंक में कलाकार प्रकृति की वस्तुओं से ही नीरव, निस्पंदित शिलाखंड, काष्ठ एवं विभिन्न वस्तुओं द्वारा आंतरिक भावनाओं को स्पष्ट कर देता है। जिससे वे जड़ पदार्थ अनन्त सुषमा के प्रतीक वन संस्कृति, मानवीय-भावनाओं, ममता, करुणा को प्रतिविम्वित कर स्मृतियों को सजग वना अतीत-गौरव में विभोर कर देते हैं। क्षणभंगुर भव के वीच स्थित ये सुरक्षित या भग्ना-वशेष रूप में मनोरंजन, कलात्मक और विशुद्ध धार्मिकता आदि से एक इतिहास को समेटे नीरव खड़े हैं। बौद्ध काल के स्वर्णिम युग में भी कितने ही कलात्मक स्तम्भ, भित्ति चित्र, मनोहारिणी श्रद्धा-मयी मूर्तियाँ विहारों और चैत्यों का निर्माण हुआ, जो समय की परिवर्तनशीलता से प्रकृति की गोद में या भूमिगर्भ में अपने अतीत को सँजोये गर्व से नीरव अवस्थित है।

एक समय था जब विजयी सम्राट अशोक और कनिष्क की रक्तवाहिनी तलवारें अहिंसा के सम्मुख नत हो गई थीं और समस्त राष्ट्र त्रिरत्न की शरण में स्वर्णिम युग की शान्तिमयी मधुरिमा में विभोर था। उसी काल में, सम्राट कनिष्क के समय में, पारा सी चमकीली निर्मल उर्मिल तरंगमयी पारा, सिन्धु सरिताओं के पुलिन पर नागवंशियों की क्रीड़ाभूमि, पद्मावती अनन्त वैभव की रानी वन कर मुस्कुरा उठी थी। सुनील गगन से होड़ लेते हर्म्यें, सुरम्य विहार, वन उपवन विशाल रणवाहिनी नागसाम्राज्य का यशोगान

करती थी। तब महाकवि भवभूति की यह स्थली तक्षशिला व नालंदा सी सांस्कृतिक केन्द्र बनी हुई थी। सुदूर देशों के विद्यार्थी वहाँ आते और शिक्षा प्राप्त कर एवं धर्मज्ञान ले जीवन को धन्य मानते थे। आज भी पारा (पार्वती) नदी और सिन्धु की निर्मल उर्मियाँ पावस की सलोनी ऋतु में अपने पुलिन विहार के भग्नावशेष तक लहरा कर चुपचाप सरक जाती है। जैसे महाकारुणिक की अर्चना में उस पावन-स्थल के चरण पखार श्रद्धा से नत हो जाती है। जहाँ सम्राट देवानांप्रिय ने शासन का प्रथम पाठ पढ़ा था, जहाँ देवी की त्याग मयी गाथा अब भी गुंजित है; उसी महामालव के ग्वालियर-शिवपुरी पथ पर नागों की नगरी पद्मावती (पवाया) वीहड़, कान्तार के मध्य उपासना में लीन सी विद्यमान है; किन्तु वहाँ के विहारों के भग्नावशेष, यत्र तत्र प्राप्रत देव-विग्रह, स्तम्भ, तोरण-द्वारों के टुकड़े आज भी पद्मावती के वैभव को, उस युग की स्मृतियों को उभार देते हैं। जब पारा का सुरम्य पुलिन अगरु धूप की श्याम लहरियों से सुरभित रहा होगा, पावन-सूत्रों और अर्चना को मंगलमयी ध्वनि से पूरित हो वहाँ के वैभव में उल्लास निखरत रहा होगा, और अनुपम शान्ति का वह वातावरण महाकारुणिक की करुणा से प्लावित हो जीवन को धन्य कर दिया होगा।

आज भी वहाँ एक अलौकिक शान्ति है, सुषमा है। समय आयेगा और नागलोक की उत्खनित वस्तुयें नागवंशीय के स्वर्णिम वैभव, बौद्ध कला प्रियता, विशुद्ध धार्मिक भावनाओं एवं संस्कृति के पावन आकर्षक प्रतीक अर्पित करेगा। उत्खनन कार्य से प्राप्त वस्तुयें इसके उज्ज्वल भविष्य की ओर संकेत करती हैं, अभी तो इस कान्तार

बौद्ध कला-कृतियाँ--



तुम्बेन से प्राप्त बुद्ध-मूर्ति

प्रदेश में मंजुल रम्य पुलिन पर प्राकृतिक सुषमा के अनन्त आगार से भावुक मन श्रद्धा से नत हो जाता है, प्रतीत होता है मानो वहाँ के तृण-तृण, लता-विरूध, सरिताओं के शीतल सलिल सीकर मंजुल कलरव एवं कलकल निनाद से अपने अंतर के करुणामय देवता की वंदना कर मानव को शील, दया, ममता, त्याग आदि की ललित कलित मृदुल भावनाओं की ओर प्रेरित कर रहे हैं।

अधिक जानकारी के लिये उत्सुक मन को विवश हो किसी कवि की इन पक्तियों को गुनगुना कर पारा के पुलिन पर भविष्य में प्राप्त होने वाले भूगर्भ की वस्तुओं के लिये शेष पूर्ति की प्रतीक्षा से मौन रहना पड़ता है जो उत्खनन के पश्चात् शीघ्र ही पूरी होगी। किन्तु इस समय तो.........

बौद्ध काल की यह, चिर सुप्त निशानी।
सोई काल गर्भ में, शेष कहानी।

खेजड़िया-भोप

—सुखी होयगो मालवो म्हारो...

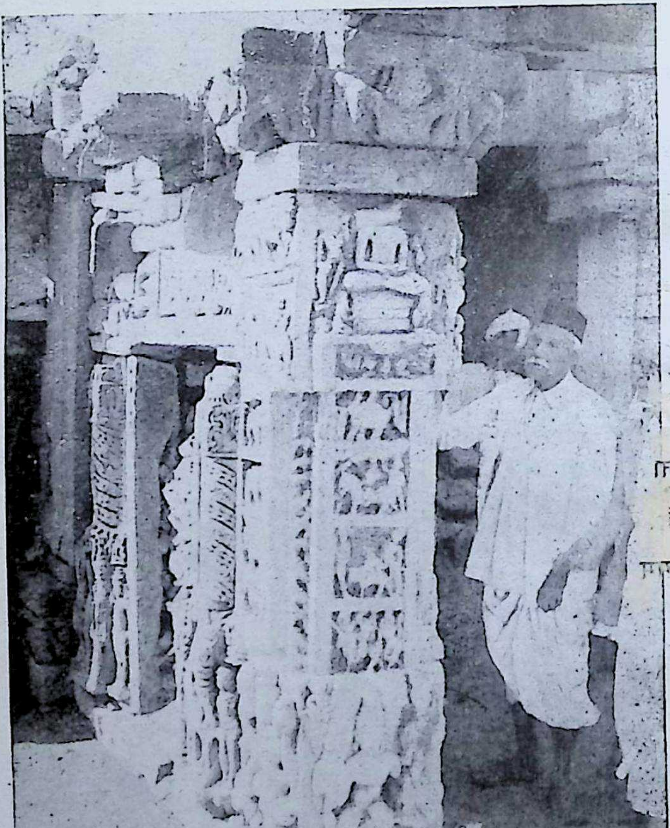
मन में राखो पतियारो, सुखी होयगो मालवो म्हारो,
वइं से रंग-बिरंगी चुनरी का आंचल लहराया,
वइं से रंग-बिरंगा वादल उठी उठी ने छाया,
ऐसी रंग-बिरंगी खेती, हियो भराइ जाय थारो,
सुखी होयगो मालवो म्हारो...

एक दिन आयेगा इन ग्राम-गीतों के मालव प्रदेश में पुनः सुख सौभाग्य का वरदान प्राप्त होगा। पूर्व से उठते शुभ संदेश के बादल अभिनव संगायन के रूप में उपदेशामृत की सुधा वर्षा करेंगे, क्या, मगध, क्या मालव विश्व को अभिनव अनुपम शान्ति प्राप्त होगी। जन-जन को मंगलमय पथ की प्रेरणा मिलेगी।

मालव के इन ग्राम गीतों के गूंजते कानन में, वरदा चम्बल की कलकल निनादिनी धारा जैसे सुख-सन्देश दे रही है। चम्बल बँधकर नवीन हरियाली, सुषमा का निर्माण करने जा रही है। वहाँ दशपुर के अंचल में अतीत की वस्तुयें भी प्रदान कीं, काले-काले मेघों के बीच छन-छन कर आती आलोक रश्मियों की भाँति खेजड़िया भोप के पावन स्तूप एवं धमनार की मनोरम गुफायें पुरातत्व प्रेमियों के सन्मुख आईं।

हिंसा में रत मध्य-एशिया के बर्बर हूणों ने जब अहिंसा के पुजारियों को कष्ट देना प्रारम्भ किया तब करुणा मैत्री के आराधकों

बौद्ध कला-कृतियाँ--



तुम्बेन का प्रसिद्ध बुद्ध-मन्दिर

ने हिंसा का प्रत्यावर्तन हिंसा या रक्त बहाकर नहीं किया वरन नीरव कान्तार में साधना का दीप प्रज्वलित किया जो आज भी कहीं कहीं अपने आलोक की आभा लिये अराधना से रत अतीत की स्मृतियों को साकार-से कर देते हैं।

मालव का दशपुर जनपद अनन्त काल से अर्चना, वन्दना के पावन सुत्तों से गुंजित हो रहा था, गिरि कंदराओं में उत्कीर्ण कला तथा शिल्प सौन्दर्य में भगवान के विभिन्न पावन मुद्राओं के अंकन, स्तूप, विहारों के निर्माण से कला को शाश्वता प्रदान की गई। सघन वृक्ष कुंजों के अंचल में खेजड़िया भोप का भवन प्रायः सुन्दर विशाल स्तूप आतप वर्षा को सहते तत्कालीन वैभव सुशान्ति एवं धार्मिक भावना का यशोगान कर रहा है।

इसी दशपुर मंदसौर में खेजड़िया आने वाले यात्रियों के हेतु [illegible]र की कलामयी पावन गुफायें भी आकर्षण की वस्तु है यह [illegible] मंदसौर (मध्यभारत) जिले में पश्चिमी रेलवे के कोटा-[illegible] लाइन पर स्थित "सुवासरा" स्टेशन से दस मील दूर है। जहाँ ट्रक द्वारा पहुँचा जाता है।

मन्दसौर जिले के गरोठ तहसील में चन्दवासा एक कस्बा है। मन्दसौर वेस्टर्न रेलवे का एक स्टेशन है। यहाँ से गरोठ तक मध्य भारत की बस और चन्दवासा तक पब्लिक बसें जाती हैं। चन्दवासा से एक मील दूर पर 'धमनार' की कलामयी गुफायें हैं। ये गुफायें एक ऊँची पहाड़ी के पश्चिमी भाग में उत्तर से दक्षिण की ओर काट कर निर्मित की गई है। १ से ४ गुफायें दक्षिण की ओर तथा ८ उत्तर की ओर ऐसे कुल २२ गुफायें हैं। ये

८ गुफायें साधारण कक्ष के रूप में हैं जो कभी साधकों, काषाय वस्त्र धारी कल्याण पथ प्रदर्शक भिक्षुगण के ग्रावास के हेतु उपयोग में ग्राती रही होंगीं। १४ गुफाग्रों में तो मानो कला सजीव होकर मंजुल भाव कथायें कह रही हैं। प्रथम दो गुफायें कक्ष के रूप में हैं। तृतीय में दस फुट ऊँचा १ फुट लम्बा ग्रौर इतना ही चौड़ा सुन्दर स्तूप है। चौथे ग्रौर पंचम में क्रमशः एक-एक स्तूप हैं। जो इससे किंचित लघु एवं ऊँचाई पर हैं। दो छोटे छोटे स्तूप भी हैं।

छठवीं एक विशाल कक्ष के ग्राकार में है, जहाँ ग्रन्तर्भाग में एक ग्रौर छोटा कक्ष है। इनके प्रवेश द्वार पर पर दो भव्य स्तम्भ एवं तोरण द्वार में शिला खंडों पर छेनी हथौड़े से कुशल कलाकारों द्वारा उत्कीर्ण कला के ग्रद्भुत देन विस्मय विमुग्ध कर देते हैं।

सातवीं गुफा में १५ फुट ऊँचा प्रवेश द्वार है। जिसमें २ फुट लम्बी मनोहर कलाकृति तोरण के रूप में ग्रंकित की गई है। इस द्वार की दोनों ग्रोर दो सुन्दर ग्रलिन्द हैं। इन्हें पार करने के पश्चात् लम्बा-सा दालान है। इस दालान में एक मनोरम कक्ष तथा चार कलापूर्ण स्तंभ शिल्पांकन के ग्रनुपम उदाहरण हैं। गुफा के मध्य एक सुन्दर विशाल कक्ष में ८ फुट ऊँची ५–५ फुट चौड़ा, लम्बा एक स्तूप है, ग्रौर समीप ही ८वीं गुफा का साधारण कक्ष है। ९वीं का गोलाकार छत जिसमें प्रस्तर को काट कर सुन्दर वेलें पत्र-पुष्प ग्रंकित किये गये हैं। ऊँचा दालान, मनोरम ग्रलिन्द, एवं २० फुट लम्बा ८ फुट ऊँचा, ८ फुट चौड़ा स्तूप एवं वांयीं ग्रोर निर्मित कक्ष सुन्दरता के साथ नीरव खड़ा है।

१०वीं एवं एकादस गुफाओं में दो लघु अलिंद साधारण कक्ष तथा चार कलापूर्ण स्तम्भ वाला एक विशाल कक्ष दर्शनीय है। इस कक्ष के तीन द्वार बड़े सुन्दर ढ़ंग पर निर्मित हैं। सम्भवतः इसके वैभव के युग में इस कक्ष में विश्वदेव के पावन उपदेश-सुधा को जन-जन में वितरित किया जाता रहा हो।

द्वादशवीं गुफा तो मानो कला को उत्कृष्टता के अंचल में समेटी, अनुपमता को साकार कर रही है। यह सम्पूर्ण गुफा एक मनोरम उपासनागृह के रूप में है जिसके मध्य में आठ फीट लम्बा, ८ फीट चौड़ा, और १५ फीट ऊँचा भव्य स्तूप निर्मित है। इस स्तूप के दोनों पार्श्व में दो सुन्दर नीथयाँ हैं। जिसके किनारे १० कलापूर्ण स्तम्भ और ६ कक्ष हैं। तृतीय कक्ष में दो मानव मूर्तियाँ समाधि की मुद्रा में हैं, चार कलामय प्रस्तर स्तम्भों से निर्मित मध्य कक्ष में करुणा मूर्त्ति भगवान बुद्ध की भव्य प्रतिमा ध्यानमयी मुद्रा में सुशोभित है। इस विशाल गुफा में वायीं ओर दो कक्ष, एक स्तूप एवं तीन अलिंद विभिन्न पत्र-पुष्पों से अंकित हैं। तत्पश्चात् १५ फीट ऊँचे, ८ फीट लम्वे चौड़े एक उत्कृष्ट जीर्ण-शीर्ण स्तूपमयी गुफा को पार कर चतुर्दसवें गह्वर से प्रवेश करते हैं, जहाँ १५ फीट के ऊँचे स्तूप हैं। तथा एक ऊँचे आसन पर महाकारुणिक भगवान की भव्य प्रतिमा मानव को श्रद्धा विभोर कर देती है। और मस्तक अर्चना भावना से विश्वेश के चरणों में नत हो जाता हैं। इसके चारों ओर सुन्दर अलिन्द है। अलिन्द के वाम भाग में एक सात फीट उँची एवं तीन लघु मानव मूर्तियाँ हैं। प्राची की ओर प्राचीर पर दो खड़ी, दो

वैठी प्रतिमाओं के मध्य भगवान की एक सुन्दर प्रतिमा अवस्थित है।

दक्षिण की ओर पन्द्रह फीट लम्वी भगवान तथागत की विशाल प्रतिमा शयनस्थ मुद्रा में पावन गम्भीरता, सात्विकता का संचार कर रही है।

ये गुफायें पश्चिमी रेलवे के नागदा मथुरा लाइन पर श्यामगढ़ स्टेशन से तेरह मील दूर तीन मील के अंचल में पहाड़ी पर निर्मित कला-कृतियों के रूप में अतीत की मनोरम निधियाँ हैं। जो दर्शनीय, विस्मयमयी, उत्कृष्ट शिल्पकला की अनुपम वस्तु है। छेनी हथौड़े से निर्मित प्रस्तर पर यहाँ सूक्ष्म शिल्पकला के दर्शन होते हैं। वहाँ खेजड़िया भोप के नीरव स्तूप भी जैसे उस स्वर्णिम मनोरम युग की गाथा को दुहराते शील-पालन के कल्याणकारी पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान करते हैं, जहाँ अलौकिक सुख है। शान्ति है।

राजपुर

सुनील नभ में क्षितिज-छोर से उठती, कादम्बिनी कभी वरस जाती है। कभी हवा के झोंकों के साथ लहरा कर दूर देश में चली जाती है। तव मेघदूत की सजल कल्पना के साथ इस मालव-धरा पर कवि-कुल-गुरु कालिदास की स्मृति सजीव-सी हो उठती है। धूमिल पृष्ठों पर नक्षत्रों से चमक उठते हैं उदयन, वासवदत्ता, सम्राट चंड प्रद्योत और महाकारुणिक भगवान तथागत की शरण में जा दिव्य शान्ति मयी कल्याणी वाणी का शुभ श्रवण करने वाले महापंडित पुण्यशील महाकात्यायन की, जिन्होंने उन उपदेशों से मालव के कण-कण को तृप्त कर दिया। इसी प्रदेश से सम्राट देवानांप्रिय अशोक की हृदयेश्वरी महारानी विदिशा कुमारी देवी ने अपने अंचलधनों को धर्म की शरण में अर्पित कर दिया और विशाल स्तूप तथा भव्य विहारों का निर्माण करवाया। समीर लहरियों में पावन सुतों एवं वन्दना की ध्वनि गूंज उठी। प्राणि मात्र धर्म की शरण में सुख-शान्ति मय स्वर्णिम युग में विचरण करने लगा।

इसी मालव के शिवपुरी जिले में जहाँ का सदर मुकाम शिवपुरी कुछ वर्ष पूर्व रियासती काल में ग्वालियर राजपरिवार की ग्रीष्मकालीन मनोरम निवासस्थली थी उसी जिले में रमणीय प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य राजपुर नाम का स्थान आज भी गौरव-पूर्ण अतीत की सुस्मृतियों से पूर्ण मौन पड़ा है।

मध्य रेलवे के बीना जंकशन से जाने वाली वीना-कोटा लाइन के गुना स्टेशन से देहरदा-ईसागढ़ रोड पर खटोरा ग्राम (गुनासे) ४० मील दूरी पर है। इस खटोरा से २० मील कच्ची सड़क पर राजपुर ग्राम है। जहाँ अतीतकालीन ध्वंशावशेष यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। राजपुर से खटोरा तक ट्रक द्वारा जाया जाता है क्योंकि सरकारी रोडवेज की बसें वहाँ तक नहीं जातीं किन्तु पब्लिक ट्रक अक्सर मिल जाती हैं।

८वीं ९ वीं शताब्दि से यह मनोरम स्तूप सुन्दर विहारों से युक्त प्रसिद्ध स्थल था। अनेक भिक्षु गण पुनीत शील मय जीवन व्यतीत करते भगवान के शान्ति पूर्ण मंगलमय उपदेशों से प्राणीमात्र के कल्याण में रत थे। भगवान की अर्चना में अगरू धूम्र की श्याम लहरियों के वीच प्रदीप की आभा उन ज्योर्तिमय के नीराजन से धन्य हो जाती थी।

अव वहाँ विहारों के स्तम्भ, शिलायें भूमि गर्भ में चिर निद्रित पड़ी हैं। यत्र-तत्र ध्वंस स्तूप मौन खड़े हैं। मानो अतीत के वैभव, परिवर्तन की मूक कथा कह रहे हैं। प्रकृति के इस नीरव रम्य स्थल में मानो शीलपालन की अज्ञात प्रेरणा हृदय को अनुरंजित कर रही हैं। साथ ही भावुक मन एक कसक के साथ यही कामना करता है—मालव पुनः अपने विस्मृत पावन युग को भावी वनाने में सफल हो सके और धर्मचक्र अंकित तिरंगे ध्वज की छाया में कल्याणी उपदेशों का पालन कर वैभव गौरव में विभोर हो सकेगा, तथा भावुक मन की यह आकांक्षा पूर्ण होगी किसी कविता की इन पंक्तियों के साथ—

विजय शंख में नाद घोप भर, मंगलमय वरदान।
जाग जाग ओ मेरे मालव, कर अतीत अनुमान॥

ग्यारसपुर के अंचल में

परिवर्तनशील समय कितने ही उत्थान पतन, सुख-दुख, उल्लास, वेदना को देखते सरकता जा रहा है। जहाँ कभी आकाश को चूमते शैल शृंग से उन्नत प्रासाद थे, वहाँ प्रकृति का नीरव साम्राज्य वन गया है। फिर भी पुरातत्व प्रेमी श्रद्धा भरे हृदय को धरणी के उस अंचल से कुछ अभिनव मंगलमयी प्रेरणा प्राप्त होती है।

चंचल शिप्रा, विमलावेत्रवती, निर्मल चंबल के अंचल प्रदेश महामालव (आधुनिक मध्यभारत) एक समय ममता, करुणा की मंजुल आभा से आलोकित था। महाकात्यायन जैसे विद्वान ने शान्ति एवं करुणा के प्रतीक भगवान तथागत की कल्याणी उपदेश सुधा को जन-जन में वितरित किया था। सम्राट देवानांप्रिय अशोक की हृदयेश्वरी विदिशा कुमारी देवी ने त्रिरत्न की शरण में जा अपने अंचल-धन कुमार महेन्द्र और तनुजा संघमित्रा को जन-कल्याण के हेतु समर्पित कर दिया तथा अपनी क्रीड़ा भूमि, विदिशा के समीप स्तूप विहारों का निर्माण करवा बौद्ध संस्कृति एवं कला को अनुपम निधियाँ प्रदान कीं।

उनकी विदिशा नगरी के समीप ही बीना से भोपाल जाने वाली मध्य रेलवे पर गुलाबगंज नाम का एक छोटा स्टेशन है। वहाँ से पन्द्रह मील की दूरी पर सुन्दर जलाशय एवं स्तूप विहारों के भग्नावशेष उस युग की स्मृति में विभोर कर देते हैं।

ग्यारसपुर में प्रतीची की ओर एवं उत्तर की पहाड़ियों पर उस काल की शिल्प-कला एवं धार्मिक भावना आज भी झलक रही है। सावन के उमड़ते मेघ आज भी भगवान बुद्ध की शान्त मुद्रामयी युगल प्रतिमाओं के चरणों पर अर्थ रूप जल बरसा जाते हैं। पुरवाई की सुरभित समीर लहरी सद्य:कुसुमति प्रसून पंखड़ियों के परिमल पराग कणों के साथ वन्दना कर धन्य हो जाती है। मानो अलक्ष्य के पावन सन्देश को प्रसारित करती है कि शील पालन से ही जीवन कल्याण हो सकता है। भगवान की ये युगल मूर्तियाँ ग्राम से पश्चिम की ओर दो मील पर विशाल शिलाओं को काट कर बनाई गई हैं। ग्राम के ऊपरी सीमा पर स्तूपों के भग्नावशेष हैं, और साथ ही एक भव्य प्रस्तर प्रतिमा है महाकारुणिक की ही। शिला खण्डों पर निर्मित कलापूर्ण अंकन नष्टप्राय होकर भी कला-प्रियता के प्रतीक बने हैं।

इन स्तूपों के ध्वंशावशेष से करीब दो सौ गज की दूरी पर पहाड़ी की पूर्वी ढाल पर एक सुन्दर जलाशय है, जो किसी समय शील पालन करते, त्यागपूर्ण जीवन व्यतीत कर ज्ञान-विज्ञान, कला, ममता के पथ पर जाने वालों की निवास स्थली होने के कारण जनरव से पूर्ण रहा होगा। आज केवल वनचरों और यात्रियों के उपयोग में आ शोभा व शीतलता का स्थान बना नीरव पड़ा है। यह सुन्दर जलाशय मानसरोवर के नाम से विदित है। इसके पुलिन पर भी शिल्प सौन्दर्यपूर्ण शिलायें यत्र-तत्र पड़ी हैं, जो पूर्व स्मृतियों को नवीनता प्रदान कर रही हैं।

बौद्ध-काल की इस एक चिर सुप्त निशानी के, अतीत के

वैभव की नीरव पावन स्मृति स्थली के, समीप मंजुल कलापूर्ण स्तम्भों से निर्मित हिंडोला, तोरण, व मठ, मन्दिर ग्रादि ग्रौर भी ग्रन्य पुरातत्व की सामग्री व दर्शनीय स्थल हैं।

नीरवता के ग्रखंड साम्राज्य में, कोकिला के गीत मधुर स्वर छेड़ देते हैं। राग-रंजिता उषा सुन्दरी ग्ररुण ग्रवगुन्ठन की ग्रोट से विहँस उठती है ग्रौर रश्मि वलयित रवि, रश्मियों के वन्दनवार से धरा को शोभायमान कर देते हैं। शत शत सुमन बिखेरती कोमल डालियों पर कलिकायें मृदु पल्लवों के साथ झूम उठती हैं ग्रौर विश्व की साकार सुषमा मानो महाकारुणिक विश्व देवता के चरणों पर नत हो जाती है तथा भावुक मन मंगलमयी मृदुल भावना में विभोर हो कह उठता है—

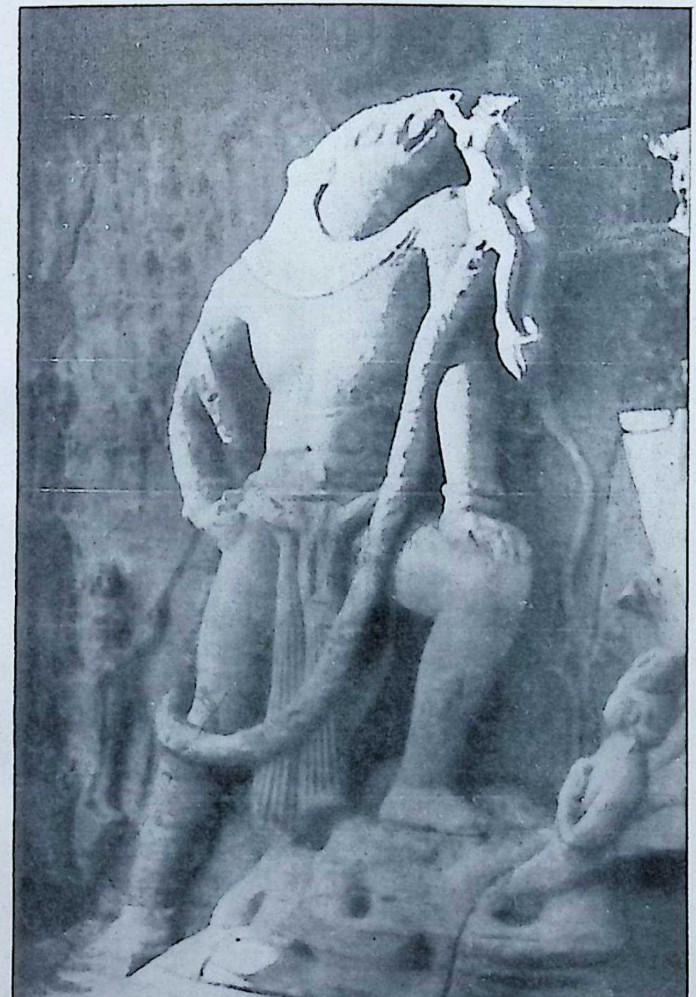
"भवतु सब्ब मंगलं"

विदिशा के परिवेण में

विमला वेत्रवती (वेतवा) और वेस नदियों के संगम पर तटवर्ती विदिशा नगरी में अवन्तिका जाते हुये सम्राट देवानांप्रिय अशोक कुछ काल ठहरे थे। वहीं उनकी प्रणयिनी श्रेष्ठिसुता महारानी देवी की निवास स्थली थी, जो महामहेन्द्र एवं शुभश्री संघमित्रा की जननी थीं। अपने अंचलधन महाश्रावक महामहेन्द्र को सिंहल-प्रस्थान के समय त्यागमयी विदिशा कुमारी देवी ने यहीं ठहराया था, तभी अनेकानेक स्तूप विहार मालव के इस अंचल में निर्मित हुये। इस स्थान से छः सात मील दूर पर साँची के पावन स्तूप भी विहार विदिशा-कंजकली की धार्मिक भावना को साकार कर रहे हैं। यह विदिशा, वेत्रवती के पुलिन पर आधुनिक भेलसा से कुछ दूरी पर स्थित है। यहाँ कई सुन्दर गुफायें शस्य श्यामला धरणी पर पहाड़ी के रूप में शोभित हैं, ये गुफायें वहुत समय से वौद्धेत्तर लोगों के द्वारा अधिकृत की जा चुकी हैं। पुण्यमयी देवी के समय में यह पूज्य भिक्षुओं की आवास स्थली के हेतु निर्मित की गई प्रतीत होती है।

लगभग बारह मील के कानन अंचल में विदिशा साँची के समीप वहुत से स्तूप समूह जीर्ण-शीर्ण दशा में भी प्रवासियों के आकर्षण केन्द्र बने हुये हैं। जिनमें चार अत्यधिक प्रसिद्ध हैं:—

१. साँची से सात मील दूरी पर पूर्व की ओर पिप्ली के स्तूप हैं।



उदयगिरि गुफा की वराह-मूर्ति

२. **सतधारा**—यहाँ से भी पावन धातुयें साँची की धातुओं के साथ ले जाई गई थीं। यह प्रतीची की ओर साढ़े छः मील पर विद्यमान है।

३. **सोनेरी**—प्रकृति के मनोरम अंक में शोभित रम्य स्थली पर स्तूपों के ध्वंसावशेष साँची से छः मील दक्षिण पश्चिम में अवस्थित हैं।

४. विदिशा से आठ मील दक्षिण पूर्व पर **अन्धेर गुफा स्थित स्तूप-समूह** है।

वेतवा के पुलिन प्रदेश पर प्राकृतिक शोभाश्री में अतीत के स्वर्णिम युग की सुस्मृतियाँ इन स्थलियों में मानव मन को आज भी मुग्ध करती हैं? जिन पर अब भी सरला प्रकृति हरित पुष्पमय परिधान पहने अपना रूप सँवारे सुरभित मृदुल-मृदुल पुष्पांजलि अर्पित कर देती है। शरद चन्द्र की अमियमयी ज्योत्सना में रुनझुन मंजीर के स्वर विदिशा कुमारी की स्मृति को सजीव कर देते हैं, जो अपने अंचल-धनों को त्रिरत्न की शरण में अर्पित कर सुदूर देशों में करुणा-मैत्री के स्वर गुँजित कर दीं, तथा अपने विदिशा के समीप कितने स्तूप विहारों का निर्माण करके विश्व कल्याण के पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान कीं। जिन खंडहरों पर कोकिला की तान भावुक मन में एक कसक एवं अर्चना की पवित्रता प्रदान करती है, तथा भावुकता गुनगुना उठती है किसी कवि की पंक्तियों को...

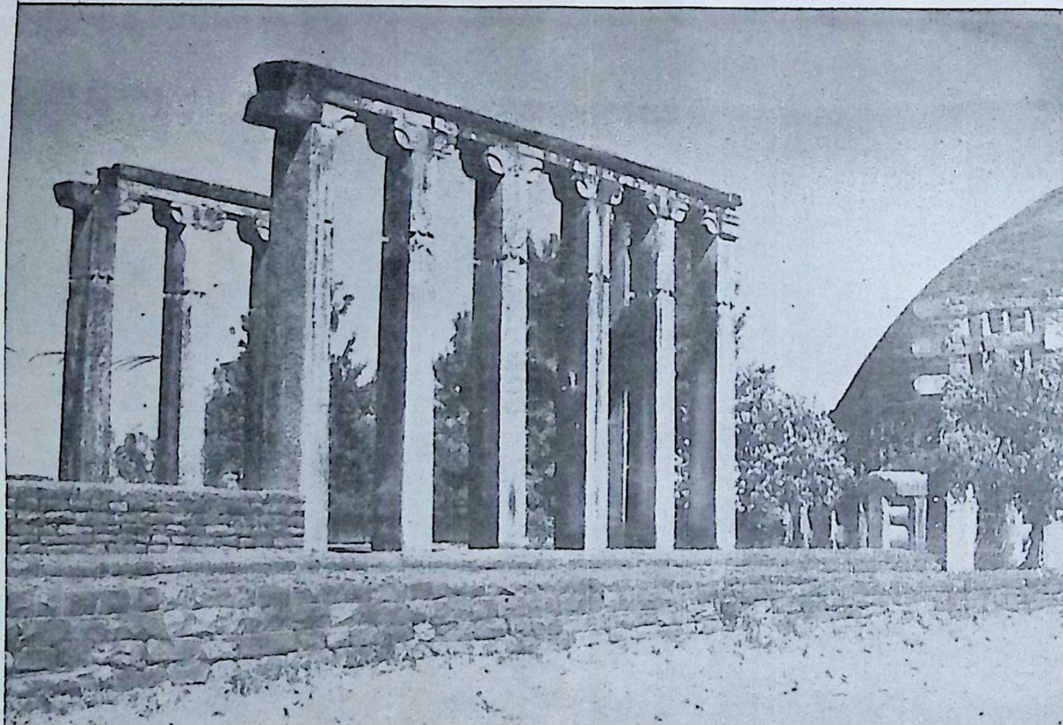
कूक कोकिले! खंडहरों की, राख धूलिकर मान,
कह दे ग्राम ग्राम की करुणा, गाथा के आख्यान।

सांची

लगभग ३०० फीट की ऊँचाई पर स्थित साँची की पहाड़ी रंग-विरंगी शिलाओं पर वासन्ती पुष्पों की शोभा से सौरभ एवं सुषमा विखेरती सम्राट् देवानांप्रिय अशोक के समय से अग्रश्रावक सारिपुत्र तथा महामौग्दलायन के पावन पुनीत धातु-पुष्पों को लिये आज भी मौन खड़ी है। उस स्वर्णिम युग से वर्तमान जनतंत्री काल तक इसने कितने ही उत्थान पतन देखे। फिर भी पलास, कर्णिकार के वृक्ष अरुणपीत पुष्पों की अंजलि बिखेर कर आम्र वृक्ष अपनी माधवी गन्धमयी मंजरियाँ अर्पित कर युग युग से अर्चना करते आ रहे हैं, क्यों न हो करुणा-मैत्री के प्रतीक महा कारुणिक भगवान तथागत के पश्चात् इन पूज्य जनों की पवित्र अस्थियों को साँची सदा से सँजो कर रखे हुई है।

जनरल कनिंघम के समय में पवित्र धातुओं को साँची और सतधारा से लन्दन ले जाया गया। मौन साँची के तोरण द्वार मूक होकर निहारते रहे। वेतवा की धारा सिहर उठी किन्तु धैर्य और शान्ति मयी प्रतीक्षा एवं प्रयत्नों के पश्चात् (जिसका विवरण बहुत बड़ा है) संस्कृति के इतिहास में २० फरवरी ४७ ई० को महान घटना घटी और पवित्र धातुयें साँची की क्या भारत की अमूल्य निधि, भारत को पुनः प्राप्त हुई फिर सिंहल, सारनाथ, बर्मा, नैपाल में अर्चना के पुष्प अर्पित किये गये। तीस नवम्बर सन् ५२ की सुनहली संध्या को महान समारोह के

बौद्ध कला-कृतियाँ--



साँची के चैत्य का पार्श्व-भाग

साथ साँची के नव-निर्मित विहार में स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधान मन्त्री एवं भारतीय हृदयसम्राट् माननीय श्री नेहरू, स्व० श्यामा-प्रसाद मुखर्जी, विभिन्न राष्ट्रों के माननीय प्रतिनिधियों ने पावन सुत्त-ध्वनियों के मनोरम वातावरण में पुनः उन पावन अवशेषों को स्थापित किया। इसी शुभ अवसर पर सिक्किम के श्रद्धालु महाराज कुमार ने यहाँ पवित्र बोधि वृक्ष की शाखारोपण द्वारा साँची की पवित्रता में और विशेषता प्रदान की।

नव-निर्मित विहार के अतिरिक्त इस लघुशैल शिखर की ऊपरी समतल भूमि पर मध्य-युग की कला, मौर्य काल के यशस्वी सम्राट् देवानांप्रिय के समय का शिल्प-सौन्दर्य, श्रद्धा-भावना, तत्कालीन स्थिति की मनोरम झाँकी मानो सिमटी हुई है। ये कलात्मक ऐतिहासिक पुरातत्व की आकर्षक निर्माण कला के अनुपम उदाहरण पाँच भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—

विशाल स्तूप एवं स्तूप-समूह, चैत्यकक्ष, स्मारक-स्तम्भ, भिक्षु आवास, तथा संग्रहालय।

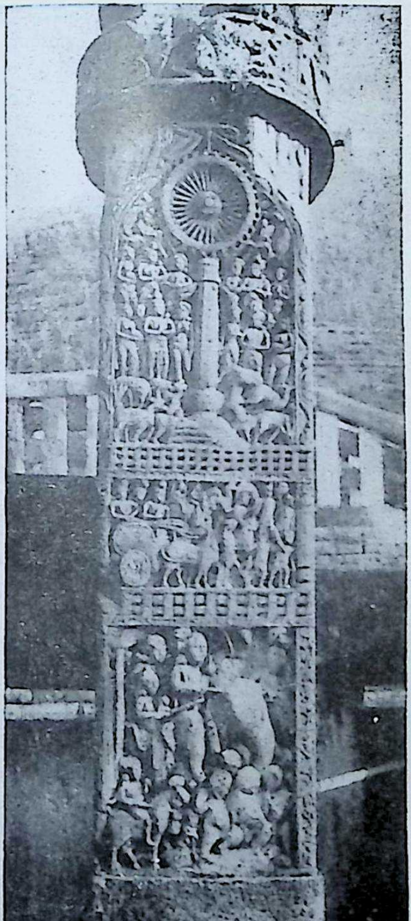
मुख्य आकर्षण का केन्द्र विशाल स्तूप जिसमें छेद कर पावन अवशेषों की मंजूषा निकाली गई थी, शिल्प-सौन्दर्य की अनुपम निधि है। यह अर्द्धगोल आकार में ऊँचे चबूतरे पर निर्मित है। स्तूप के चारों ओर प्रस्तर के सुन्दर कटघरों से युक्त दो प्रदक्षिणा पथ एक युग से आतप वर्षा को सहते सुदृढ़ खड़े हैं। इन कटघरों से युक्त स्तूप के चारों ओर चार सुन्दर तोरण-द्वार, सुन्दर अंकन द्वारा कुशल शिल्पकला से दर्शकों का मन मोह लेते हैं। दो सहस्त्र वर्ष पूर्व की कला जैसे सजीव हो रही है। इन तोरण द्वारों पर पद्म पुष्प एवं पावन जातक कथाओं को अनुपम रूप में

चित्रित किया गया है। उत्तर की ओर निर्मित तोरण द्वार पर भगवान् के जीवन सम्बन्धी पुनीत घटनाओं का अंकन टेढ़ी-मेढ़ी बंकिम खोदाई द्वारा कमनीय एवं भावपूर्ण है, छः दन्तों से युक्त बलशाली छद्दन्त जात की सम्पूर्ण घटना तथा अन्य जातकों की कहानियाँ बहुत सुन्दर विधि से अंकित की गई हैं। द्वार की बायीं ओर एक नारी-मूर्ति भी मनहर है।

दक्षिणी द्वार पर वनराज जातक की कथा अनुपम शोभा बिखेरती उस कथा को साकार कर रही है, जब भगवान् ने महा-कपि के रूप में जन्म धारण किया था। तब वाराणसी के ब्रह्मदत्त नरेश ने गंगा-पुलिन पर स्थित उनके आवास, आम्र वृक्ष को घेर लिया था, महाकपि ने अपने शरीर का पुल बना कर अपने आश्रितों की रक्षा की थी। प्राची एवं प्रतीची के द्वार पर वृषभ, हरिण, कंज कुसुम कलिकाओं की पृष्ठ-भूमि पर अंकित रम्य जातक कथायें तत्कालीन प्रस्तरकला की अनुपम देन हैं। विभिन्न भावमयी प्रतिमाओं में तत्कालीन वेशभूषा, आभूषण आदि उत्तमता से चित्रित हैं। इस स्तूप के शीर्ष भाग पर सुन्दर छत्र बने हुये हैं, जो मनोरम घेरे से घिरे हैं। चारो प्रवेश द्वारों के भीतर समीप ही भगवान की चार भव्य प्रतिमायें गम्भीर मुद्रा में उच्चासन पर आसीन है। इससे कुछ छोटा किन्तु महत्वपूर्ण स्तूप उत्तर-पूर्व की ओर स्थित है।

इनके अतिरिक्त ४०–४५ स्तूप हैं जो कुछ तो ठीक स्थिति में और कुछ ध्वंस प्राय से हैं। ये वड़े बड़े और एक-एक फुट छोटे भी हैं। किन्तु सभी गुम्वद के आकार में ही हैं। ये

बौद्ध कला-कृतियाँ--



जातक कथाओं से अलंकृत साँची
का एक स्तम्भ

तत्कालीन धार्मिक, त्यागशीलों की स्मृति स्वरूप कितनी ही कहानियों को लिये हुये हैं।

स्तम्भों से निर्मित चैत्य, कक्ष के कलात्मक स्तम्भ इसके प्रमाण हैं कि यह पहले अपनी उत्तम स्थिति में रहा होगा। जहाँ महा-रानी देवी के जीवन काल में उल्लास की मधुरिमा निखरती रही होगी।

धर्मशील भिक्षुगण के आवास जीर्ण-शीर्ण दशा से विद्यमान हैं। वर्तमान में नया विहार भी आधुनिक भवन निर्माण कला की उत्तम वस्तु है। एक विशाल प्रस्तर स्तम्भ के कलापूर्ण खंड पड़े हैं। जिसे सम्राट ने धर्म प्रचारार्थ निर्माण करवाया था। ये सुन्दर स्थापत्य कला के प्रतीक हैं। स्तम्भों का शीर्ष भाग जिसमें एवं चक्र अंकित है संग्रहालय में प्रवेश करते ही ध्यान आकर्षित करते हैं। जिनमें से एक १०×६ फीट ऊँचा व चौड़ा है दूसरी मनो-हारिणी वस्तु है किंचित झुकी हुई पद्मपाणि बोधिसत्व की लगभग सात फीट ऊँची अलंकृत प्रतिमा, भावुक मन को श्रद्धा से विभोर कर देती है।

इनके अतिरिक्त चूड़ियाँ, पात्र, लोहे के अस्त्र-शस्त्र, मृत्तिका-पात्र, अन्य आभूषण राजकीय मुद्रायें, आदि तत्कालीन वेशविन्यास, रहन-सहन, जीवन, सामाजिक धार्मिक स्थिति को दर्शाती बौद्ध कालीन स्वर्णिम युग का यशोगान कर रही हैं। जिस युग में प्राणि मात्र के हृदय को करुणा एवं मैत्री से विजय किया गया था। आज भी जनतंत्रीय भारत उन्हीं सम्राट् द्वारा निर्मित पावन ऋषि-पतन (सारनाथ) के धर्मचक्र अंकित तिरंगे ध्वज की छाया में पुनः शान्ति का दूत बन शान्ति प्रसार में लीन है।

साँची बौद्ध संस्कृति की रानी-सी तत्कालीन श्रद्धा भावना एवं सभ्यता की प्रतीक है,। जहाँ मौर्य काल की अनुपम व उत्कृष्ट शिल्प कला के दर्शन होते हैं।

सुन्दर शिल्प साकार कल्पना के, प्रतीक से वन्दनवार,
जिसके स्तम्भों पर अंकित, जातक रम्य रूप अवतार।
संसृति में गुंजित कर दो फिर, स्वर्णिम युग के गौरव गान,
विदिशा-राज-नन्दिनी के ओ, श्रद्धामय पावन उपहार ।।

अंगुलिमाल की निवास स्थली

जिस मनोरम भूमि की हृदयहारिणी प्राकृतिक सुषमा प्राणिमात्र के मन को मोह लेती है, नित्य प्रातःकाल की माधवी बेला में जहाँ रागरंजिता उषा हेम कुम्भ या आलोकित मंगल कलश लिये विहंसती आती है और विश्व रवि रश्मियों की आभा में उल्लासित हो उठता है। नील जलाशय पर अरुण शुभ्र, नील कंजकलिकायें मुस्कुरा उठती है और भावुक भ्रमर गुनगुना उठते हैं। इसी मनोरम पावन धरा पर महाकारुणिक ने जन्म धारण किया और शान्ति एवं करुणापूर्ण मंगलमय उपदेशों से विश्व कल्याण किया। यहाँ वीहड़ कान्तारों में कितनी विचित्र स्थलियाँ कितनी ही स्मृतियों को लिये आज उपेक्षिता सी पड़ी हैं, उनमें से एक है विन्ध्या के अंचल प्राचीन नाम दशार्ण, आधुनिक विन्ध्य प्रदेश में स्थित भिया कुंड।

यह स्थान किसी समय वीहड़ भयावह स्थल रहा होगा। आज भी ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि जंगल में आठ-दस ग्रामवासियों की झोपड़ियों के अतिरिक्त यहाँ कोई जन-निवास नहीं है। यात्रीगण सदा आया करते हैं। सागौन, चिरौंजी निकलने वाले चार, तेदू, आम, नीम, मधूक आदि के वृक्ष इस पर्वतीय स्थल पर बहुतायत से हैं। यह स्थान भिया कुंड, रेलवे स्टेशन से काफी दूर है, किन्तु मोटर मार्ग से काफी समीप है। इलाहाबाद के

समीप मानिकपुर जंकशन से झाँसी जाने वाली लाइन पर हरपालपुर नामक स्टेशन है। वहाँ से बस द्वारा छतरपुर जाया जाता है, (जो छतरपुर जिले का सदरमुकाम है) छतरपुर से बिजावर मोटर जाती है। बिजावर छतरपुर जिले की तहसील का सदरमुकाम है। बिजावर से बीस मील दूर दक्षिण की ओर कच्ची सड़क पर यह विचित्र स्थान भिया-कुंड है। किम्बदन्ती है कि प्राचीन समय में यहाँ एक डाकू रहता था, जो बड़ा डरावना था। वह लोगों के धन और प्राण हरण कर लेता था, वह जिसके प्राण लेता था, उसकी एक उँगली का एक पोर अपनी माला में पिरो लेता था। एक समय एक देवता पुरुष से उसकी भेंट हो गई और वह बलवान डाकू डाकूपन छोड़ कर साधु बन कर कहीं चला गया।

उक्त किम्बदन्ती से विदित होता है कि उस भयानक डाकू की कथा विख्यात डाकू अंगुलिमाल की हो सकती है, जिसने भगवान् तथागत की शरण में जा रौद्र कर्म त्याग शान्तिलाभ किया था।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण है ही, साथ ही प्राकृतिक एवं भूगर्भ वेत्ताओं के उपयोग की दृष्टि से भी। पहाड़ी के भीतर एक गुफा है, जिसकी लम्बाई १३५ फुट और चौड़ाई ६५ फुट है, इस गुफा के भीतर लगभग २५ फुट लम्बा १० फुट चौड़ा एक कुंड है। इस कुंड तक पहुँचने के लिये दो द्वार हैं। एक अपार बोझ वाले पाषाण के प्राकृतिक छत पर जो बिना किसी स्तम्भ या सहारे के न जाने कितने काल से अवस्थित है। उसके

बीचोबीच एक बहुत बड़ा छेद है। यह किसी ज्वालामुखी का मुख कहा जाता है, जहाँ से कई सौ फीट नीचे गहराई पर कुंड का सुनील जल दृष्टिगोचर होता है। जानवरों के गिर कर मर जाने के कारण अब इस छेद के किनारे लोहे के कटीले तार का घेरा बनवा दिया गया है, और दूसरा है पहाड़ों से गुफा के भीतर पहुँचने का द्वार, जिससे प्राणी कुंड तक सुविधापूर्वक आते जाते हैं। जहाँ से गुफा में प्रवेश करते हैं, वहाँ पाषाणों को काट कर दो मंजिला दालान बनाया गया है। बिजावर पहले बुन्देलखंड एजन्सी में एक रियासत थी, वहाँ के क्षत्रिय महाराज स्वर्गीय सावन्तसिंह जी प्रवेश द्वार से कुंड के जल तक जाने के लिये पाषाणों को काट कर बनाई गई प्राचीन सीढ़ियों को सुधरवा दिये हैं। कुंड के एक ओर दालान में ये सीढ़ियाँ हैं दूसरी ओर केवल दालान ही है, तीसरी ओर एक पत्थर काट कर दीवार और उस पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनवा दी गई हैं। चौथी ओर जल का खिचाव है। तैराक लोग सीढ़ियों से दीवार पर चढ़ कर जल में कूद कर तैरते हैं पर खिचाव की ओर कोई नहीं जाता। उधर बहुत अंधेरा और सकरापन है। एक बार एक व्यक्ति उस ओर तैरता हुआ चला गया था, जो उधर ही खिच गया और उसका कोई पता न चला। इस गुफा में पर्याप्त प्रकाश रहता है और कुंड का जल सुनील एवं स्वच्छ है। यदि पैसा डाला जाता है, तो वह काफी गहराई तक डूबता नजर आता है। इसकी अनन्त गहराई का पता उक्त महाराज साहब लगाने का प्रयत्न किये पर पूर्णतः सफलता न मिली। यहाँ का जल स्रोत का जल

है। वर्षा का पानी यहाँ नहीं पहुँच पाता। इसका यह स्वच्छ जल रासायनिक प्रभाव युक्त है। गंगा जल की भाँति इसका जल भी शीशियों में बन्द रखने पर भी खराब नहीं होता। चूना एवं खनिज द्रव्यों के प्रभाव से यह जल पेट की बीमारियों के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ है, और भी लाभ होंगे जो अभी अज्ञात हैं।

विन्ध्य-प्रदेश एवम् पड़ोसी प्रदेशों के दर्शक प्राय: वहाँ जाया करते हैं, और प्रकृति के इस विचित्र, अनुपम तथा मनोरम पर्वतीय स्थल की विचित्रता और बीहड़ता पर चकित हो जाते हैं; बिजावर के किन्हीं नरेश ने लगभग आध मील दूरी पर एक सुन्दर विश्रामगृह बनवा दिया है जहाँ वे प्राय: ठहरा करते थे। अब भ्रमणप्रिय यात्रियों को वहाँ ठहरने के लिये जिलाधीश महोदय छतरपुर से सुविधा प्राप्त कर लेना चाहिये। बिजावर से भिया कुंड जीपकार भी जा सकती है।

यदि विन्ध्यसरकार इस ऐतिहासिक प्राकृतिक आश्चर्य के आगार तक जानेवाली सड़क को ठीक करा दे तो एक अनुपम एवं उपयोगी स्थान आज की संस्कृति को सुलभता से प्राप्त हो जायेगा और यह बौद्धकालीन विख्यात अज्ञात स्थान देश विदेश के भ्रमणशीलों तथा भूतत्व-वेत्ताओं का आकर्षण केन्द्र बन सकेगा।

७

खजुराहो

स्वतंत्र भारत के ऐतिहासिक पोस्टेज स्टाम्स में देखा गया है––खजुराहो का मनोरम प्रभावशाली शिल्प-कलामय मन्दिरों का चित्रांकन, जो चित्र में इतने सुन्दर हैं वे प्रत्यक्ष में सत्य, सुन्दर और कल्याणकारक उपदेशों की पावन स्मृतियाँ भी हैं। किन्तु रेलवे लाइन से दूर होने के कारण यह कला-तीर्थ वनस्थली के बीच युग-युग से उत्थान पतन को देखते नीरवता में खड़ा उन युगों का यशोगान कर रहा है, जहाँ कभी विभिन्न संस्कृतियों के ८४ मंदिर थे आज कठिनाई से २५–३० ही होंगे। एक समय था जब सुदूर चीन का यात्री हुएनसांग भारत आया था, तब वह देखा था पावन वौद्ध विहारों को, विद्या के केन्द्र खज्जुर्वाह को। यद्यपि वहाँ के तत्कालीन नरेश ब्राह्मण थे किन्तु मंगलमय त्रिरत्न के प्रति श्रद्धामयी भावनायें रखते थे। उस समय त्यागमय जीवन व्यतीत करते काषाय वस्त्रैधारी स्थविरगण नाना प्रकार की शिक्षा देते जीवन के उज्ज्वल पथ का प्रदर्शन कर रहे थे, सुख-श्री से खज्जुर्वाह एवं समीपस्थ स्थली पूर्ण थी काफी वर्षा होती, जलाशय भी कंज-कलिकाओं को अंचल में समेटे लहराते थे। उक्त प्रदेश धन-धान्य से भरा पूरा था। अगरु धूम्र की श्याम लहरियों, अर्चना वन्दना के पावन स्वरों के बीच सुख शान्ति विराज रही थी।

वही स्थान आज खजुराहो के नाम से विख्यात है। यह स्थान २४·५१° अक्षांश और ९०° देशांश पर स्थित है। यहाँ से आठ

मील पर पूर्व की ओर चंचल तरंगों वाली केन नदी बहती है। विन्ध्य-प्रदेश के छतरपुर जिले में छतरपुर नगर से २७ मील पूर्व की ओर यह ग्राम स्थित है। मध्य रेलवे (पूर्व नाम जी० आइ० पी०) के इलाहाबाद समीप्रस्थ मानिकपुर झाँसी लाइन के हरपालपुर स्टेशन से छतरपुर तक बस द्वारा जाते हैं। छतरपुर से राजनगर ग्राम तक फिर बस सर्विस है। राजनगर के समीप ही खजुराहो के दर्शनीय स्थान श्री सम्पन्न वैभवशाली विख्यात नगर खज्जुर्वाह की स्मृति लिये खड़ हैं। विशाल भव्य मंदिरों की निर्माण कला मानव को मुग्ध एव चकित कर देती है। शिल्प-कला के उत्कृष्ट प्रतीक भावभंगिमापूर्ण मुद्रामयी मूर्तियों को सँजोय भारतीय शिल्प सौन्दर्य की निधि को गर्व से समेटे है। समस्त भारत में इतने प्राचीन मंदिरों के समूह शायद ही कहीं हों। इनके प्राचीरों पर्व निर्मित भाव-भंगिमायें पूर्ण प्रतिमाओं में दो ढाई सहस्त्र वर्ष पूर्व के जीवन की, संस्कृति की झलक स्पष्ट दिखाई दे रही है, दर्शक इन्हें देख कर स्मृतियों में खो जाता है। पाषाणों पर अंकित शिल्पकला सुन्दर व अनुपम है, अत्यांचारी महमूद गजनवी भी इस पुण्य स्थली की कला-सौम्यता के सन्मुख नत हो गया था, और यहाँ के वहुत से विशाल मंदिर नष्ट होने से वच गये थे।

इसके वैभव के कारण "खजूर्वाह" इन पूर्व नाम के लोग कई अर्थ लगाते हैं, कि यहाँ युगल खजूर वृक्ष स्वर्ण के निर्मित कराये गये थे, किन्तु उनका कोई चिह्न भी अवशिष्ट नहीं है हाँ, खर्जूर वन में स्थित होना इस नाम की सार्थकता को सिद्ध करता है। इस प्राचीन नैसर्गिक सुषमामयी भूमि के समीप कई मनोरम गुफायें,

कलकल निनादित झरने, हरित कुसुमित वृक्षावलियाँ, तृण वीरुध एक नवीन उल्लास का संचार करते पवित्रता एवं शान्ति का सन्देश दे रहे हैं। खर्जूरसागर, शिवसागर, जटकरी, कुरार नाला नाम के छोटे-छोटे ग्रामों में ये मन्दिर और संघाराम तथा विहारों के ध्वंसावशेष दूर-दूर तक फैले हुए हैं। ये लगभग ६–७ मील के क्षेत्र में हैं। यदि विन्ध्य सरकार इन टीलों के उत्खनन की ओर ध्यान दे तो पुरातत्व प्रेमियों को बौद्ध कालीन कला की अनुपम वस्तुयें प्राप्त हो सकेंगी।

बौद्धकालीन सुन्दर पावन संघाराम और विहारों के अवशेष तथा एक विशाल विहार का खंड एवं मन्दिर के खंडहर का टीला वैभवशाली विद्या केन्द्र की मंजुल स्मृतियाँ हैं। जहाँ एक समय देश देशान्तर के शिक्षा प्रेमी आकर शान्ति, करुणा ज्ञान की प्राप्ति कर त्यागपूर्ण, शीलमय जीवन व्यतीत करते थे। त्रिरत्न की शरण में जा मंगलमय सन्देशों को प्रसारित कर विश्व कल्याण के पथिक बनते थे। उस पावन स्थल में बौद्धकाल के अतिरिक्त जैन, वैदिक शाक्तकलापूर्ण मन्दिर, सुन्दर सरोवर एवं मूर्ति संग्रहालय भी दर्शकों के आकर्षण का केन्द्र है। यहाँ मनोरम मूर्तिकला को देख अतीत के वैभव गौरव में मुग्ध मन कवि की इन पंक्तियों को साकार पा गुनगुना उठता है।

खजुराहों में सोहती मूर्तिकला साकार है।

भद्रावती

कोयल के मधुर गीत, विहगों के कलरव नित्य ही जहाँ मधुरिमा बिखेर देते हैं। वह खंडहरों के पूर्व स्मृति चिह्नों की रानी भद्रावती आज भी पुरातत्व का आकर्षण केन्द्र है। प्राचीन काल में यह प्रसिद्ध वाकाटक वंश के श्रद्धालु बौद्ध नरेशों की राजधानी थी। गगनचुम्बी प्रासाद, मनोरम उपवन, सुन्दर पथ-वीथियों में वैभव झाँकता था। विख्यात चीनी यात्री हुएनसांग अपनी भारत यात्रा में इस नगरी में भी आया था। उसने देखा था किले की सुदृढ़ दीवारों को, कला-पूर्ण प्रवेश द्वार को और सुख शान्तिपूर्ण जीवन को। वहाँ एक हजार से अधिक स्तूपों का होना भी उक्त यात्री के वर्णन से विदित होता है। जहाँ एक हजार से अधिक स्तूप थे, वहाँ बौद्धकालीन स्वर्णिम अतीत की सुखश्री कैसी रही होगी? आज उसकी कल्पना मात्र की जा सकती है। आज वहाँ की प्राचीरें भग्न हो चुकी हैं। तोरण वीते युग की याद लिये दिन गिनते खड़े हैं।

भद्रावती नगरी जिसे अब माँदक ग्राम कहते हैं, वहाँ से एक मील दूर पर अति प्राचीन एक गुफा है जो "वज्रासन" के नाम से विदित है। इस गुफा के तीन भाग हैं—एक विशाल गुफा मध्य में है और दो गुफायें उसके पार्श्व में हैं। महाकारुणिक भगवान बुद्ध की तीन विशाल एवं भव्य प्रतिमायें तीनों गुफाओं में अवस्थित हैं। ध्यानमयी मंजुल मुद्राओं के दर्शन से मानव श्रद्धा से नत हो

जाता है। इन कन्दराओं के आस-पास स्तूपों के ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। कई टीलों के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं। उत्खनन के पश्चात इनमें तत्कालीन कला-सौन्दर्य की अनुपम निधियाँ अवश्य प्राप्त हो सकती हैं, जो पुरातत्व प्रेमियों के लिये तथा तत्कालीन सांस्कृतिक ज्ञानार्जन के हेतु अभिनव देन होंगी। ये स्मृति चिह्न, बज्रासन की कलापूर्ण गुफायें ये शालीन भव्य प्रतिमायें उस युग की याद दिलाती हैं, जब यह नगरी मंगलमय उपदेशों की सुशीतल छाया में सुख, सौभाग्य, श्री से पूर्ण रही होगी। साथ ही विद्या एवं कला का केन्द्र भी।

भद्रावती "वर्तमान भाँदक" मध्यप्रदेश में स्थित है। वहाँ तक जाने के लिये पहले मध्यप्रदेश की राजधानी नागपुर जाना पड़ता है। नागपुर से बी० एन० आर० लाइन के चाँदा स्टेशन जाते हैं। चाँदा से चालीस मील दक्षिण की ओर भद्रावती का मन्दिर गुफायें एवं ध्वंसावशेष है। चाँदा से भाँदक रोड नामक छोटे स्टेशन तक ट्रेन जाती है। भाँदक रोड से दो तीन मील पर भद्रावती है।

बज्रासन की भव्य गुफायें, स्तूपों के अवशेषों के अतिरिक्त पेशवाओं द्वारा निर्मित लाल पाषाणों का पुल, सुन्दर जलाशय, भग्न मन्दिर, मूर्तियाँ एवं प्राचीरों की भव्य नीवें तत्कालीन वैभव की याद दिलाती हैं। तथा यात्रियों के आकर्षण की वस्तुयें हैं।

यहाँ समीप में जैन मन्दिर के भी खंडहर थे जहाँ हाल ही में जैनियों ने विशाल मन्दिर निर्माण कर पूजादि का प्रवन्ध कर लिया है काश ! बौद्धकालीन अनुपम सुरक्षित निधि "बज्रासन" की पुनीत गुफाओं में भी धूप-दीप का प्रवन्ध हो जाता और विश्व देवता के

कल्याणकारी उपदेशामृत के प्रसार से समीपस्थ जनता लाभ उठाती। यह स्थली पुनः विद्या एवं कला केन्द्र हो जाती तो जन-कल्याण के साथ कला एवं संस्कृति की उत्तम निधि सुरक्षित रह जाती।

....

०

बौद्ध कला-कृतियाँ--



बाघ गुफा का भीतरी दृश्य

मालवा के बौद्ध अवशेष

बौद्ध साहित्य के इतिहास में मालवा प्रदेश का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह निर्मला नर्मदा, चंचल चंबल, विमला वेत्रवती का पुलिन प्रदेश कितनी ही गौरव गाथा एवं सांस्कृतिक अवशेषों को अंचल में समेटे स्वर्णिम युग का यशोगान कर रहा है। करुणा मूर्ति भगवान तथागत के जीवन काल में जब समस्त उत्तराखंड उपदेशों की शीतल छाया में शान्ति लाभ कर रहा था, तब इस प्रदेश की पावन, पुनीत प्रमुख नगरी उज्जयिनी के नरेश चंड प्रद्योत ने अपने पुरोहित कात्यायन को भगवान तथागत के समीप भेजा कि वे उन्हें आदरपूर्वक अवन्तिका लिवा लावें। किन्तु महापंडित कात्यायन ने भगवान की वाणी का अर्थ समझ लिया और महाकारुणिक की शरण में नत हो गये।

उस उपदेश सुधा को उन्होंने उज्जयिनी एवं मथुरा में वितरित कर जन-कल्याण किया। मधु पिन्डक, कात्यायन एवं पारायण नाम से अवन्तिका के समीप "मद्यकरकट" के कानन में निवास कर मंगलमय उपदेशों को प्रसारित करते रहे। जाति व्यवस्था के अत्याचार के सम्बन्ध में मथुरा नरेश से इनका वार्तालाप हुआ जो माधुरीय सुत्त के नाम से आज भी पालि-साहित्य में विद्यमान है।

ऋषिदासी और अवन्तिका को पदमा के त्याग और सम्राट देवानांप्रिय की अर्धाङ्गिनी महारानी देवी की धर्म-भावना नारी जाति के लिये गर्व की वस्तु है। इनके अतिरिक्त पारा-सिन्धु के

अंचल में, नर्मदा तट के माहेश्वर में, धमनार, तुम्बवन की गुफाओं में तथा साँची के गौरवशाली स्तूप के समीपस्थ साँची से दक्षिण की ओर ६ मील पर सोनेरी, सोनेरी से ६ मील पर सतधारा, से स्तूप व विहारों के भग्नावशेष मालव प्रदेश की धर्म भावना के प्रतीक बन कर करुणाकलित भावनाओं की ओर प्रेरणा दे रहे हैं। महारानी देवी की जन्मभूमि विदिशा से तीन मील दूर दक्षिण पूर्व में भोजपुर और नौ मील पर स्थित अंधेर के स्तूपों की निशानी भुलाई नहीं जा सकती। इस तरह अनेक स्मृति चिह्न एवं गौरव गाथायें मालव प्रदेश के अतीत को जगमगा रही हैं।

पुरातत्व एवं ऐतिहासिक खोजों से आशा है कि मालवा पुनः अपने स्वर्णिम अतीत को वर्तमान बनायेगा, और महाकारुणिक के मंगलमय उपदेशों का पालन जन-जन का जीवन धन्य हो जायेगा।

बौद्ध कला-कृतियाँ---



बाघ की गुफाओं का एक दृश्य

मालवा के बौद्ध साहित्यक

चंचल चम्बल, विमला वेत्रवती, शीतल शिप्रा और निर्मल नर्मदा (रेवा) के पुलिन प्रदेश स्थित महामालव की धरा, जिसने करुणा मैत्री के प्रतीक चिर कल्याणमय त्रिरत्न की अर्चना कर स्वयं को धन्य माना, उस मालव की निधि अवन्तिका के शासक अशोक सम्राट देवानांप्रिय के स्वर्णिम युग में बौद्ध धर्म ने पूर्ण विकास प्राप्त कर विश्व को शान्ति का अभिनव सन्देश दिया और वेत्रवती तटवर्ती प्रदेश की पुत्री देवी ने सम्राट देवानांप्रिय की हृदयेश्वरी ने अपने अंचलधन महामहेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा को त्रिरत्न की शरण में अर्पित कर दिया था।

धवल स्फटिक एवं कंचन महलोंमयी शोभा-शालिनी मालव धरा शरच्चंद्र की धवल माधुर्यमयी चाँदनी बरसा कर चन्दा का दीप लिये शत-शत पुष्पों की अंजलि ले, विश्व देवता की (पूजा) अर्चना करती है। उसने साहित्य द्वारा भी धर्म की विद्वतापूर्ण आराधना की, यह गर्व का विषय है, साथ ही सम्मानपूर्ण भी।

भगवान् तथागत के समय में अवन्तिका के नरेश चंड प्रद्योत के पुरोहित महाकात्यायन अथवा महाकच्चायन तथागत की शरण में गये और त्रिरत्न की मंगलमयी आभा के सम्मुख नत हो गये। जन-जन की सेवा और धर्म का प्रचार जीवन का लक्ष्य बन गया। जन-जन की समानता के हेतु जाति-भेद की विडम्बना को दूर करने के लिये मथुरा-नरेश से हुई उनकी प्रभाव-शालिनी वार्ता आज भी

माधुरिय सुत्त के नाम से विख्यात है। मालव के कण-गण को कल्याणकारी उपदेशों से अनुरंजित करने वाले विद्वान का नाम आज भी साहित्य में सम्मानपूर्वक लिया जाता है।

पति की योग्य पत्नी भद्रा ने भी उज्जयिनी के विहार में (जिसे महाराज प्रद्योत ने निर्माण करवाया था) काषाय धारण कर शेष जीवन धर्मप्रचारार्थ अर्पित कर दिया था। यद्यपि अब इनका साहित्य समय के परिवर्तनों से अप्राप्य-सा हो रहा है, किन्तु ये बौद्ध साहित्याकाश में सदैव देदीप्यमान रहेंगे।

फाहियान के पश्चात भारत आने वाले श्रद्धालु यात्रियों ने महाकात्यायन की अर्चना स्थली महामालव की यात्रा को विस्मृत नहीं किया। वि० स० ११८ में हुयेनसांग, तत्पाश्चात् कोरियन सर्वज्ञान देव (सुऐन) आदि यहाँ आते रहे। महाराज शालिवाहन के समय में चीन त्रिरत्न की शरण में जा चुका था, मालव वासियों ने भी अनेकानेक कष्ट सह कर दुर्गम स्थली में प्रवास करते सुदूर में जा बौद्ध साहित्य के भंडार को पूर्ण करने में योग दिया, तथा चीन और जापान को भारतीय संस्कृति से प्रभावित किया। जिसकी अमिट छाप आज भी जापानी नाट्च साहित्य में अंकित है।

महाकात्यायन के पश्चात् यहाँ धार्मिक साहित्याकाश में काश्यप मातंग का उदय हुआ इस मालववासी श्रमण ने वि० स० १२४ में चीन पहुँच कर लोयान नामक मठ में अपनी साधना का दीप प्रज्वलित किया। उन्होंने एकान्त साधना, धर्म भावना से सुत ग्रन्थ का चीनी भाषा में भाषान्तर किया और यहीं उक्त भाषा में मंगलमय उपदेशों का प्रचार करते शेष जीवन अर्पित कर दिया।

काश्यप मातंग की शुभ यात्रा के कुछ काल पश्चात् श्रमण धर्मरत चीन गये। वहाँ काश्यप मातंग के साथ ४२ परिच्छेद के सूत्रों को चीनी भाषा में अनूदित किया। ये उक्त भाषा का गहन अध्ययन कर चीनवासियों में इतने हिलमिल गये कि वे इन्हें "कू फा लान" के नाम से आदरपूर्वक पुकारने लगे। इन्होंने स्वतंत्र रूप से भी अन्य बौद्ध धार्मिक ग्रंथों को चीनी भाषा में भाषान्तरित किया।

विद्वतवर गुण भद्र ७८ ग्रंथों के पुष्पों की अंजलि का उपहार सुदूर चीन को दिये जिनके मृदु सौरभ से करुणा, मैत्री और शान्ति का सन्देश था। इन श्रमण ने कितने संकट पूर्ण कानन, वीथियों को पार कर महान श्रमपूर्वक ७८ ग्रथ रत्नों को चीनी भाषा में भाषान्तर कर अनुपम भेंट प्रदान किया।

धर्मजाल यहाँ अमितायुष के नाम से अनेकानेक ग्रंथों का अनुवाद कर साहित्य श्री को सुषमाशालिनी बनाते हुये धर्मप्रचार कर चीन में रह भारतीय गौरवगरिमा की मंजुल कड़ी बने।

तत्पश्चात् संघभद्र, गुणवृद्धि, धर्मपति एवं उपशून्य साहित्य के जगमगाते नक्षत्र हैं। विद्वान उपशून्य मालव के एक राजकुमार थे, जो वैभव को त्याग कर चीन गये। वे. ई. घराने की राजधानी नानकिंग में भ्रमण करते, पावन शान्तिमय धर्म संदेशों को प्रसारित करते हुए इन्होंन चीन की सेवा की और पाँच ग्रन्थ रत्नों को चीनी में अनुवाद कर चीनी जनता को मनोरम एवं शुभ उपहार प्रदान किया। चीन की राजधानी नानकिंग जा श्रमण परमार्थ ने १० ग्रन्थों का और विद्वान रत्नमति ने तीन ग्रन्थों का चीनी भाषा में भाषान्तर किया।

विद्वान अतिगुप्त और श्रमण पुण्योपाप को भी नहीं भुलाया जा सकता। अतिगुप्त ने एक सुन्दर ग्रन्थ का अनुवाद किया और श्रमण पुण्योपाप ने डेढ़ सौ ग्रन्थ रत्न चीन पहुँचाये। चीनी भाषा में मौलिक एवं अनुवादित ग्रंथों को निर्मित कर ये कीर्ति विस्तार में योग दिये। साथ ही तत्कालीन सम्राट द्वारा अति सम्मानित हुये।

नरेन्द्रयश, प्रमिति एवं धर्मरुचि नामक मालववासी विद्वानों ने भी चीन जा, परिश्रम पूर्वक वहां की भाषा का अध्ययन कर एवं कतिपय ग्रन्थों का चीनी मे अनुवाद कर करुणा मैत्री की ललित कलित भावनाओं से उक्त प्रदेश को अभिनव शान्ति में विभोर कर दिया।

समस्त भारत मालव, मद्रास, कोशल आदि से जितने बौद्ध विद्वान साहित्याराधना द्वारा धर्म प्रचारार्थ चीन गये उनमें लगभग चौथाई प्रवासी अर्पित करने का सौभाग्य मालव को प्राप्त है।

हजारों वर्ष पूर्व कंटकाकीर्ण भयावह कान्तार पथ वीथियों से दूर सुदूर जा वहाँ की भाषा का गहन, गम्भीर, अध्ययन कर उस भाषा में अमूल्य ग्रन्थ सृजन कर तथा पावन पुनीत ग्रन्थों को पालि एवं संस्कृत से अनुवाद कर साहित्य की अर्चना करने वाले मालव विद्वानों का साहस, उनकी धर्म-प्रचार भावना मालव गौरव को अमरत्व प्रदान करती है।

मध्ययुग में मालव धरा इनके सुनामों को सँजोये मौन नीरव हो भविष्य की ओर निहारती रही। अब त्रिरत्नानुभाव से वह समय शीघ्र आवे कि पुनः मालववासी हिन्दी में बौद्ध साहित्य की

सेवा कर पूर्व साहित्याराधना की परम्परा में गौरवपूर्ण कड़ी जोड़ दें, और भावुक मन की यह कामना पूर्ण हो...

जाग जाग री मधुर कल्पने, ले मालव गौरव आख्यान
नव गुंजित हो पुनः विश्व में, करुणा-मैत्री के जय गान

बौद्ध महिलाओं की निर्मल प्रेरणा

लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व जब भारत-भूमि दुख, शोक, निर्ममता, विवशता अत्याचार की ज्वालामुखियों के निःश्वाश में झुलस रही थी, तभी हिमालय के अंचल में हिमकिरीटिनी की आशाओं के प्रतीक ने उत्तराखंड की पावन वन्य स्थली लुम्बिनी में माया रानी के नव-जात शिशु के रूप में जन्म धारण किया। प्रकृति मुस्करा उठी पूर्णिमा की निशारानी ने चन्दा का दीप सँजोकर आरती उतारी। समय के साथ साथ अनेक घटनायें हुई। विश्व के दुखों से दुखी होकर उन्होंने अपनी रूपराशि अर्धांगिनी गोपा, नवजात शिशु राहुल और अनन्त वैभव का परित्याग कर दिया। उरुवेला के पावन अंचल प्रदेश में निरंजना के पुलिन उन्होंने मार विजय किया। वह दिव्य घड़ी भी आई जब उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ और दुख की निबिड़तम रजनी बीत गई। उन जननायक की कल्याणी वाणी गहन सुनील अम्बर में, धरा पर गूंज उठी। सागर की फेनिल उर्मिल तरंगें उसे प्रतिध्वनित कर धन्य हो गई। यज्ञों में मूक पशुओं का बलिदान, कातर चीत्कार स्थगित होने लगा।

मूक-प्राणी की तरह सुकोमला सरला पीड़िता नारियों ने उनके जीवन-काल में ही त्रिरत्न की शरण में आश्रय चाहा। महाकारुणिक की करुणा द्रवित हो उठी, और महादेवी प्रजापति, त्याग सहिष्णुता की पावन प्रतीक देवी गोपा (यशोधरा) सहित

शाक्य ललनाओं ने हँसते हँसते त्यागमय जीवन को स्वीकार कर लिया। राज प्रासादों की रमणियाँ, कृषकों की नारियाँ सभी समान थीं, समान था उनका रहन-सहन, और समान ही थी उनकी दिनचर्या एवं समान रूप से ही था उपदेश श्रमण। उन नारियों ने भगवान के श्री चरणों के समीप रहकर विश्व को दिखा दिया कि नारी भी पुरुषों की तरह साधना कर सत्य का अनुसरण करती हुई मोक्ष प्राप्त कर सकती है। केवल पुण्यमयी काषाय परिधानों शोभिता भिक्षुणियाँ ही नहीं गृहस्थ नारियों ने भी उन मंगलमय उपदेशों को ग्रहण कर ममता स्नेह एवं प्राणि मात्र के प्रति करुणा की ललित कलित भावनाओं द्वारा कितने ही युद्ध और विरोध से मानवों की रक्षा कीं। सम्राट बिम्वसार की पत्नी महादेवी वासवी, सर्वस्व दान करने वाली कलामयी आम्रपाली, अवन्तिका की पद्मा आदि अनेक नारियाँ निज गृह में निवास करती हुईं अनुपम त्याग एवं मैत्री का आदर्श भावी नारी के लिये अर्पित कर दी।

बौद्ध संस्कृति का वह स्वर्ण-युग था। जब कलिंग विजय के पश्चात् सम्राट अशोक देवानांप्रिय के रूप में त्रिरत्न की शरण में जा शान्ति लाभ और मानव के हृदय पर विजय प्राप्त किये थे। तब भी बौद्ध युग की नारी आगे ही बढ़ती रहीं। उनकी प्रिया पत्नी 'देवी' ने अपने नयनों के तारे पुत्र-पुत्री को धर्म के चरणों में समर्पित कर दिया था। साँची, विदिशा, सोनेरी, विदिशागिरि, भोजपुर तुम्बवन के अनेकानेक स्तूप विहार निर्मित करवा पावन वातावरण से मधुर शान्तिदायिनी सुत्तों की मंगल ध्वनि ने संतप्त हृदयों को शीतलता प्रदान की। देवी पुत्री संघमित्रा ने सुदूर नील

जलधि के मध्य में स्थित सिंहल (श्री लंका) के निमंत्रण को स्वीकार कर राजरानी अनुला देवी एवं पाँच सौ नारियों को त्रिरत्न की शरण में लाया। सुदूर देशों में जापान, चीन, वर्मा, बाली ही क्या समस्त एशिया, यूरुप एवं अमेरिका महाद्वीप में भी कल्याणी करुणा का अलोक पावन पथ की ओर प्रेरित करने लगा। शुद्ध सात्विक जीवन, प्राणिमात्र के प्रति करुणा, सहिष्णुता एवं अपूर्व त्याग का जो उत्तम उदाहरण बौद्ध नारियों ने नारी जाति के सन्मुख रखा है वह महान है।

जनतंत्र के युग की नारी महाकारुणिक भगवान् तथागत के उपदेशामृत से हृदय को जीतने वाले सम्राट देवानांप्रिय अशोक निर्मित अशोक स्तम्भ के धर्मचक्र अथवा अशोक चक्र के चिह्नांकित ध्वज के नीचे अपने स्वर्णिम अतीत को भावी बनाने का प्रयत्न करे, तो जीवन धन्य हो जायगा। सहनशीलता, ममता, सत्यता, शान्ति, के पावन वातावरण में शील पालन से धीरे-धीरे समस्त कठिनाइयाँ सरलता पूर्वक सुलझ जायेंगी।

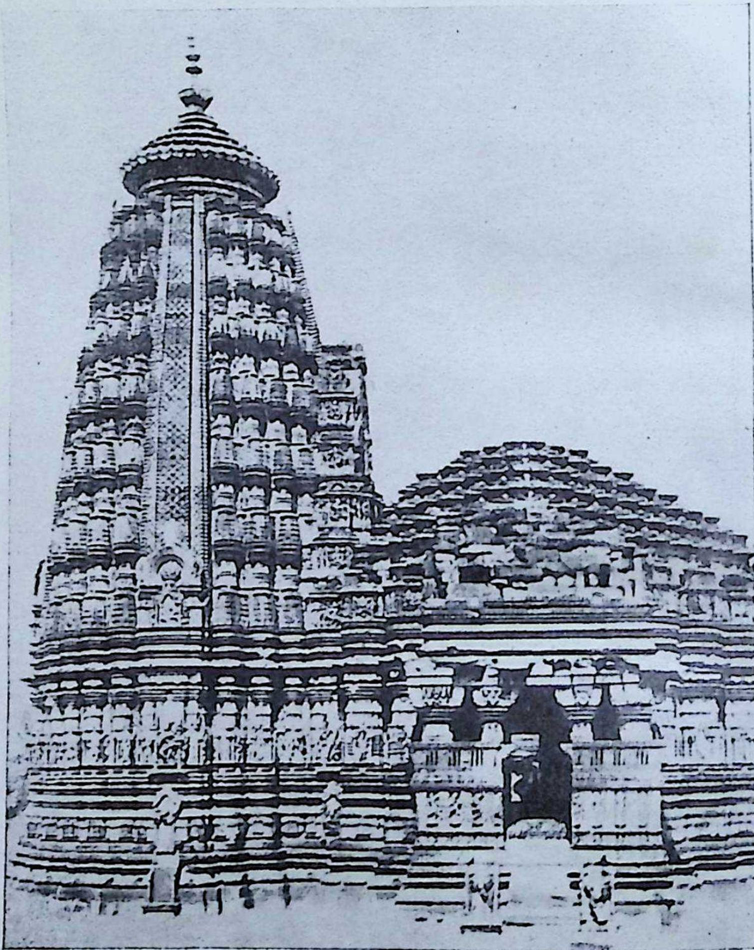
उन नारियों की गाथायें जहाँ इतनी उज्ज्वल हैं वहाँ उस युग की प्रतिमाओं एवं चित्रांकन से बौद्ध कालीन नारियों की वेशभूषा नारी-जाति के लिय गर्व की वस्तु है। उसमें सांस्कृतिक भाव एवं भारतीयता की अमिट-छाप है, प्रभाव है। अजन्ता का वेणी बन्धन, केश विन्यास कला, विभिन्न आभूषण किस सुस्कृत नारी के मन को नहीं मोहते, चाहे वह किसी भी धर्म की हो। आज भी नैपाल, भूटान, सिंहल, चीन इंडोनेशिया आदि देशों की नारियाँ भारत भूमि पर स्थित कल्याण संघ की जन्म भूमि ऋषिपतन, लुम्बिनी, कुशीनगर,

साँची के दर्शन कर, अजन्ता की शिल्प सुषमा को निहार कर, श्रद्धा के पुष्प चढ़ा, हर्ष, विस्मय, उल्लास, का अनुभव करती हैं। पूर्णिमा की ज्योत्स्नामयी राका (निशा) की सौभाग्यशालिनि घड़ियों में हम विदिशा कुमारी की जन्म भूमि महामालव एवं भारत की महिलायें अपने अतीत की उज्ज्वलता को पहिचाने तो स्वयं, अपने परिवार को, और साथ ही देश को उस माधुर्य में विभोर कर सकती हैं जिसमें वर्तमान संकट धीरे-धीरे विनष्ट हो जायेंगे, और वही स्वर्णिम शान्ति मय युग साकार हो जायेगा। जिस युग की स्मृति में उन नारियों की करुणा कलित भावना एवं कर्तव्य शीलता की याद में आज भी भावुक मन श्रद्धा विभोर हो कह उठता है...

"नमो बुद्धाय, नमो धर्माय, नमो संघाय !"

परिशिष्ट

बौद्ध कला-कृतियाँ--



उदयपुर का उदयेश्वर-मन्दिर

राजपूत-कालीन शिल्प-सौंदर्य

वीणा से विश्व-विमुग्ध करनेवाली वासवदत्ता के पिता अवन्ति नरेश सम्राट चंड प्रद्योत एवं विदिशा-कुमारी-देवी के हृदयेश्वर सम्राट देवानांप्रिय अशोक के स्वर्णिम युग में मालव की शस्य श्यामला धरा पर विमला-वेत्रवती, चंचल-चर्मण्यवती, निर्मल-रेवा, शीतल-शिप्रा के पुलिन प्रदेश से विदिशा, साँची, उज्जैनी, माहिष्मती, पद्मावती आदि में अनेकानेक स्तूप विहारों के निर्माण हुये। विभिन्न भावना मयी मुद्राओं में विश्वदेव की पावन प्रतिमाओं का अंकन एवं निर्माण नगरों तथा गिरी कंदराओं में हुआ, उन्हें 'श्रद्धा भावना अर्पित करने वाले' यात्री गण मालव (आधुनिक मध्य-भारत) भ्रमण के साथ जहाँ बौद्धकालीन स्वर्णिम युग की झाँकी के दर्शन प्राप्त करते हैं, वहाँ कतिपय राजपूत कला की सुन्दर वस्तुयें भी उनके मन मुग्ध करने में सफल होंगी।

नरवर

आठ कुँआ नव बावली, सोलस सौ पनिहार।
इनके आवत जात ते, गढ़ में रहत बहार।

नरवर का दुर्ग, जहाँ कभी इतना जनरव रहता था, आज उजड़ी दशा से कलाकृतियों को सँजोये कितनी कथाओं को समेटे नीरव खड़ा है। मध्य-भारत की राजधानी ग्वालियर से छोटी लाइन द्वारा शिवपुरी स्टेशन पहुंच कर बस से नरवर जाते हैं।

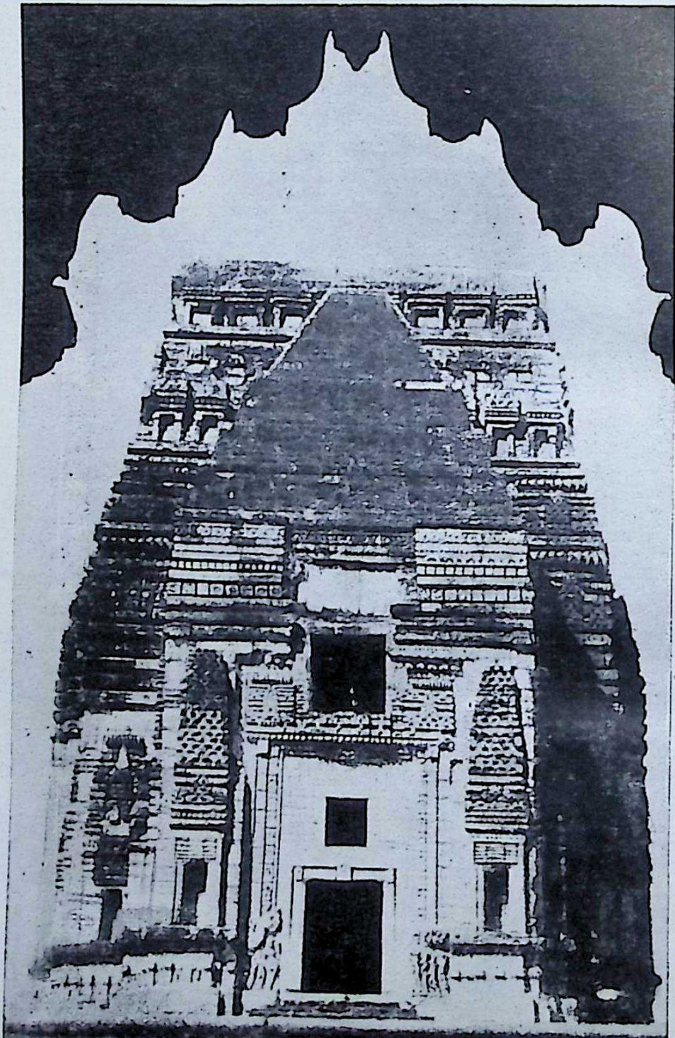
मोटर स्टैण्ड से दुर्ग जाने के लिये पहले महाराज दौलतराव का विजय स्तम्भ मिलता है, फिर पर्वत की चढ़ाई पड़ती है। दुर्ग के मुख्य द्वार तक ३९८ सीढ़ियाँ चढ़कर चार सौ फीट की ऊँचाई पर पहुंच जाते हैं। किले के लाल पत्थरों के पन्द्रह फीट चौड़ परकोटे (सीमा प्राचीर) से तीन द्वार पार कर चौथे द्वार तक पहुँचते हैं। जो हवापोर के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें काठ के बड़े फाटक पर नौ इंच लम्बी नोकदार कीलें जड़ी हुई हैं। इस द्वार पर सदैव श्रम हारिणी सुशीतल स्वच्छ वायु आती रहती है।

हवापोर से कचहरी महल जाते समय १४×१६ फीट लम्बी चौडी तीन फीट गहरी अरुण पाषाण की सीप दर्शनीय है। इसमें सुन्दर शिल्पांकन भी है। यह कभी राज रमणियों के स्नानार्थ प्रयोग किया जाता रहा होगा। ऐसा प्रतीत होता हैं।

कुछ पुराने भवनों को पार कर वीर ऊदल की प्रणयिनी परिणीता नरवर राजनन्दिनी फूलकुमारी का महल है। जिसे हलहल महल कहते हैं। यह सुन्दर अलिन्द पर निर्मित बारहदरी सी है। इसके दक्षिण की ओर के प्रस्तर स्तम्भ हिलते थे। अलिन्द के दोनों पार्श्व में बैठने के लिये स्थान गेलरियाँ बने हैं। मध्य में दो स्तम्भों से सहारे एक झूला बना है। यहाँ से दिखाई देती काली सिन्ध नदी का दुर्ग को पश्चिम से पूर्व की ओर घेरती हुई धवल धारा मनोरम प्रतीत होती है।

पास ही दो मंजिला कचहरी महल है। जिसका ऊपरी मंजिल विश्राम गृह की भाँति है। जहाँ यात्री गण ठहरते हैं। इसके दक्षिण में तीन महल हैं। मध्य में शीशे से जटित सुन्दर कक्ष है। जहाँ

बौद्ध कला-कृतियाँ--



ग्वालियर का तेली-मन्दिर

दर्शक को अपने असंख्य प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होते हैं। प्रतीची की ओर स्वर्णमहल है जीर्ण शीर्ण दशा में भी इसमें कहीं कहीं स्वर्णिम रेखायें विगत वैभव का याद दिलाती है।

इसके अतिरिक्त अनन्त जलराशि मय कटोरा ताल, अष्टभुजा महिषवाहिनी देवी (चौदह फीट लम्बे भैंसे पर विराजी हुई हैं) की प्रतिमा, नृत्य से नरवर जीतने की आकांक्षा रखने वाली तरुणी नृत्यांगना रज्जुनर्तकी की समाधि (किले के पश्चिम भाग से) सती रेवा परेवा की समाधि, खलील खाँ का मकबरा भी दर्शनीय है। नल-दमयंती, फूलकुमारी-ऊदल, ढोला-मारु, रज्जुनर्तकी की कथाओं को सँजोये नरवर दुर्ग प्राचीन वैभव से युक्त है। समीप ही शिव-पुरी की रम्य प्रकृति मुग्ध कारिणी है। साथ ही संख्या सागर, महाराज माधवराव शिन्दे की छतरी समाधि आधुनिकता से रंजित है। सन् सत्तावन के स्वातंत्र्य युद्ध के महान वीर तांत्या टोपे की समाधि भी यहीं शिवपुरी में है।

धारानगरी

राजपूत काल की सुन्दर कला-कृतियाँ विख्यात नरेश भोज और गणितज्ञा लीलावती की गौरवमयी गाथा को लिये धारानगरी यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है। देवी कालिका का मंदिर धारेश्वर की आराध्य देवी सरस्वती का मंदिर, किला, भोजशाला तथा कमलपुष्प-पत्रों से सुशोभित विशाल सरोवर और अन्य ध्वंसा-वशेष तत्कालीन शिल्प सौन्दर्य तथा भवन आदि निर्माण कला की अनुपम निधियाँ हैं।

चंदेरी

मध्य-भारत के गुना जिले में गुना से बस द्वारा चंदेरी जाते हैं। शिशुपाल की यह विख्यात नगरी, सुन्दर दुर्ग, एवं कितनी बावलियों से सुशोभित है। राजपूत कला के साथ मुगल स्थापत्य कला के सुन्दर नमूने बादल द्वार, किला आदि सुन्दर हैं ही। बाबर की चढ़ाई के समय जौहर ताल के समीप तत्कालीन चंदेली नरेश मेदनीराय की प्रधान राजमहिषी ने कितनी ही सुकुमारी राजरमणियों के साथ सतीत्व रक्षार्थ जौहर किया था। वह स्थान भी करुण कथा को लिये उन वीराङ्गनाओं की याद दिला रहा है।

अन्यान्य

विदिशा के समीप बरेठ स्टेशन से चार मील दूरी पर नील कंठेश्वर का सुन्दर मंदिर जिसके स्तम्भों और प्राचीरों पर मंजुल कलात्मक मूर्तियाँ निर्मित हैं, सुन्दर मनोरम बेल लतायें अंकित हैं। उदयपुर के मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। एक सरोवर भी दर्शनीय है। तत्कालीन वेश विन्यास पूर्ण सूक्ष्म सुन्दर अंकनमयी मूर्तियाँ, उक्त काल की संस्कृति को साकार कर रही है। इस मंदिर में यह विशेषता है कि प्रातः कालीन किरणें प्रथम ही देव मूर्ति के समीप आलोक बिखेरती हैं।

ग्वालियर का सुदृढ़ दुर्ग दर्शनीय है। मानमन्दिर, सास बहू (सहस्त्राबाहु) का मंदिर, संगीत की रानी राजा मानसिंह की राजमहिषी कृषक कुमारी मृगनयनी का गूजरी महल, संगीत के सफल साधक तानसेन, भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध की प्रथम आराधिका झाँसी

की रानी लक्ष्मी देवी की समाधि गौरव के साथ उनकी कथाओं की सु-स्मृति को दिला रही है।

यहाँ का संग्रहालय भी दर्शनीय है। बाग की गुफा से प्राप्त शिल्पकला की बौद्ध कालीन अनुपम निधियाँ जिन्हें अन्य राष्ट्रों के दर्शक भी देखकर विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं, यहाँ सजाकर रखी गई हैं।

आधुनिक भवन-निर्माण कला के दर्शनीय स्थानों में मोती महल, जल-विहार महल, उषा-महल आदि सुन्दर स्थान हैं।

मुस्लिम युग की ऐतिहासिक स्थलियाँ

बाज बहादुर वीर नृपति थे, रुपमती थी रानी।
आज अमर वह प्रिय प्रियतम की, परिणयमयी कहानी।

× × ×

जूझी थी तलवारों पर, जिनकी अलमस्त जवानी।

मुस्लिम युग की सुन्दर कलाकृतियाँ-भवन, मकबरे, उद्यान, प्रासाद एवं मसजिदों के रूप में (यवन-कला से पूर्ण बनी) निर्माता शासकों की कथायें दुहरा रही हैं। इन्हीं में सारंगपुर और मांडव ऐतिहासिक नगरों में अपना स्वतंत्र स्थान रखते हैं। मालव की स्वर-किन्नरी रूपरानी, गन्धर्व कन्या रूपमती और उसके प्रणयी वाज बहादुर की प्रणय कथा मानों सारंगपुर और मांडव में साकार हो रही है।

मध्य-भारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी इंदौर से अस्सी मील पर तथा देवास से सत्तावन मील पर यह स्थान सारंगपुर स्थित है। उक्त स्थानों में बस द्वारा वहाँ पहुँचा जाता है। भोपाल-उज्जैनी रेलवे के मस्सी स्टेशन से तीस मील बस द्वारा जाने पर भी सारंगपुर पहुँच जाते हैं।

सतीत्व रक्षा के हेतु प्राणों का बलिदान करने वाली रूप-लतिका रूपमती इसी सारंगपुर की गंधर्व कन्या थी। सारंगपुर को १२९८ ई० में सारंगसिंह नामक क्षत्रिय वीर ने बसाया था। मुस्लिम युग में यह नगर अपने पूर्ण वैभव को प्राप्त हुआ। यहाँ के हिन्दू शासक गोगादेव को सन् १३०५ में अलाउद्दीन खिलजी के किसी सिपह-

बौद्ध कला-कृतियाँ--



चन्देरी का बादल महल दरवाज़ा

सालार ने पराजित किया था। कालान्तर में चित्तौड़ नरेश कुम्भा ने यवन शासक मुहम्मद खिलजी को पराजित किया था। मध्ययुग में दिल्ली की सत्ता के डगमगाने पर यवन सरदार शुजावल खाँ मांडव के स्वतंत्र सुलतान वन गये। जो मांडव दुर्ग को छोड़कर अधिकांश रूप में सारंगपुर में रहते थे। इन्हीं के पुत्र मृगया प्रेमी, कलाप्रिय वाजवहादुर ने सारंगपुर के शिवमंदिर में रूपराशि रूपमती को संगीत की साधना करते देखा। प्रतिभाशालिनी संगीतज्ञा के रूप पर वे मुग्ध हो गये। जाति धर्म के वीच प्रणय जीत गया और सारंगपुर की स्वरकिन्नरी की रूपज्योति से मान्डव दुर्ग के राजप्रासाद जगमगा उठे।

काली सिन्धु नदी की चमकती धारा के पूर्व पुलिन पर स्थित सारंगपुर आज भी सौन्दर्यशाली रूप और यवनकालीन भवन निर्माण कला की स्मृति दिला रहे हैं।

सारंगपुर का सुन्दर शिवमंदिरः—जिसके प्रांगण में रूप संगीत की साधना करती थीं—ग्राम की उत्तर पूर्व सीमा पर विद्यमान है।

रूपमती का गुम्बदः—मांडव की राजमहिषी रूप आदम खाँ के मांडव पर आक्रमण के समय वाजबहादुर के पलायन से वन्दिनी हो गई थीं, तब यहीं आदमखाँ से सतीत्व रक्षार्थ अपने प्रिय की याद ले विषपान कर नश्वर शरीर को त्याग दिया था। गुम्वद आज भी ध्वंस अवस्था में चारों ओर चार द्वार एवं सुन्दर अलिन्द के साथ आकर्षक प्रतीत होता है।

इसके समीप ही सात आठ गुम्वदों में एक पहलवान का गुम्बद कहलाता है। जिसका द्वार दक्षिण की ओर है। शिला लेख से

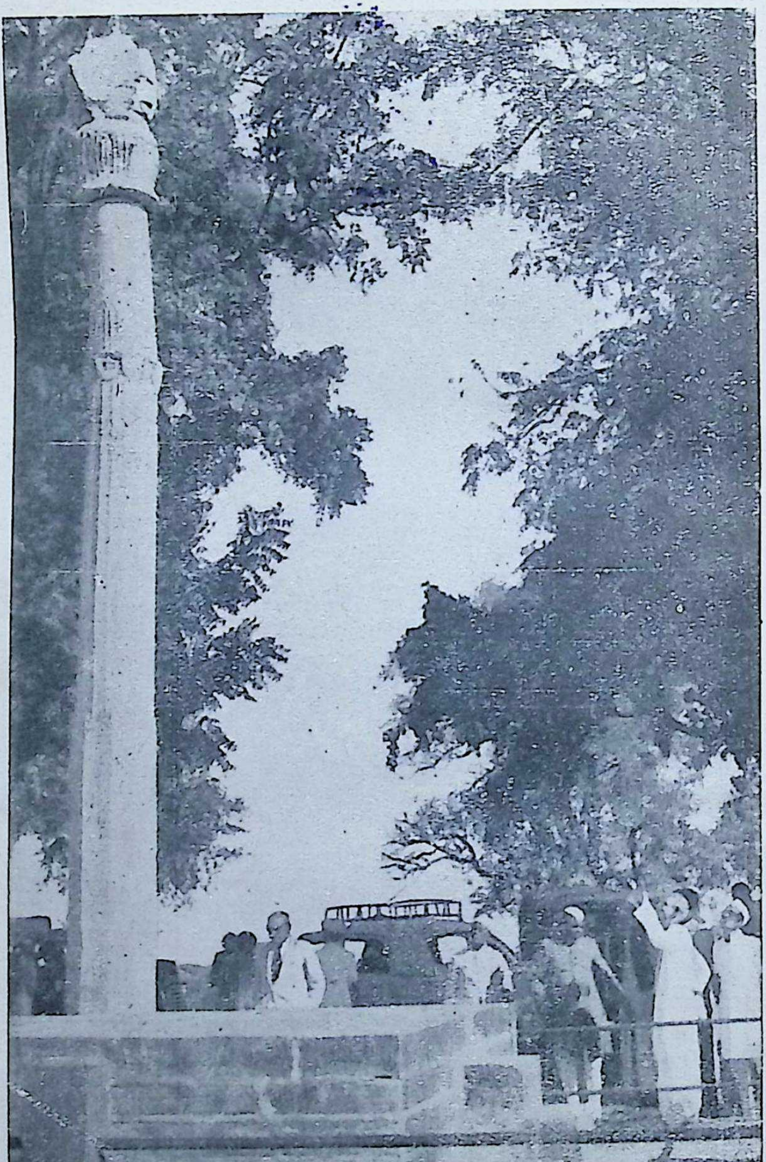
विदित होता है कि गयासुद्दीन खिलजी के समय में शाला-भवन के हेतु इसका निर्माण हुआ था।

काली सिन्ध के कगार के समीप ही मुसलमान शिल्प-शैली की झलक लिये छनिहारी पनिहारी की गुम्वद है। छनिहारी नामक घोष जाति की स्त्री ने गरीबी में भी कठिन परिश्रम की कमाई को अपनी समाधि बनवाने के लिये धन एकत्रित किया था। उसके इच्छानुसार उक्त गुम्बद वनाया गया। इसी प्रकार पनिहारी नाम की भिस्ती जाति की स्त्री की कहानी है।

पीर मुसमखाँ, सय्यद चाँद, पीर मिट्ठन शा, पीर ढोकले के गुम्वद भग्न प्राय होते हुये यवन शिल्प कला की सुन्दर मेहरावें, प्रांगण के साथ शोभित हैं। इनके अतिरिक्त पीर मैमन खाँ की भट्ठी नामक स्थान, लाल हाजिरा, और जामा मसजिद मनोरम इमारत है। भट्ठी का ७०×९० फीट का प्रांगण, तिमंजिला भव्य द्वार, स्तम्भ, जालीदार वातायन, मेहराब एवं अलिन्द भवन निर्माण तथा स्थापत्य कला की मंजुल निधियाँ हैं।

सोलह स्तम्भों पर आधारित लाल हाजिरा का गुम्वद, जामा-मसजिद की सुदृढ़ प्राचीरें भी दर्शनीय हैं।

सारंगपुर में हिन्दू शासक भी बहुत समय तक रहे। दो सौ वर्ष पूर्व देवास नरेश द्वारा निर्मित काली सिन्ध के मध्य स्थित कपिलेश्वर का मन्दिर, तट पर बने देवी तथा मारुति के मंदिर आकर्षक हैं। यह नगर अति महीन साड़ियों के लिये भी विख्यात था। कहा जाता है यहाँ की सुन्दर साड़ियाँ इतनी वारीक होती



भेलसा के समीप बेसनगर स्थित हेलिग्रोडोरस-स्तम्भ

थीं कि आम्रफल की जाली (जिसके भीतर गुठली रहती है) में भरी जा सकती थीं।

मांडव:—रूप सुन्दरी रूपमती मांडव की राजमहिषी के रूप में जब मांडव के प्रासाद को सौंदर्य तथा संगीत से विभूषित एवं सुगुंजित कीं, तब प्रणयी बाजबहादुर ने अपने भाग्य को सराहा। रूप हिन्दू थी अतः रेवा (नर्मदा) पर बड़ी श्रद्धा रखती थीं। नित्य रेवा दर्शन कर उसे बड़ी प्रसन्नता होती थी। सुलतान ने अपनी परिणीता प्रणयिनी के लिये रेवा दर्शन महल नामक एक ऊँचे भवन का निर्माण करवाया। जहाँ से नित्य रेवा का दर्शन व अर्चन करती थीं। तत्पश्चात् जहाज महल, हिन्डोला महल, एवं अशर्फी महल नामक कलात्मक प्रासाद रानी रूपमती के लिये निर्मित हुये। बाज बहादुर महल तथा रूपमती महल भी दर्शनीय हैं। रेवा कुन्ड और नीलकंठ के अतिरिक्त जामामसजिद होशंगशाह का मकबरा तथा मुहम्मद खिलजी का मकबरा है, इनके सुन्दर स्तम्भ, कंगूरे, द्वार, गुम्बद, मेहराबें मुस्लिम कला की ,अनुपम वस्तुयें हैं। रूपमती महल के समीप का जलाशय संगीत की रानी रूप की उस स्मृति को सजीव कर देता है। जब बाजबहादुर अन्य बेगमों के समीप होते तो स्वर किन्नरी रूप मन बहलावे के लिये सितार के पतले तारों पर विहाग के स्वर छेड़ देती थी कम्पित समीर की लहरियों से संदेश पा संगीत की राग-रागिनियों से उसका उत्तर में बाजबहादुर प्रणयिनी के समीप आ जाते थे। भूप-कल्याण राग की निर्मातृ रूप ही मानी जाती हैं। इसी प्रकार इसके कला प्रिय हृदयेश्वर बाज बहादुर ने ख्याल बाजखानी तर्ज निकाला था।

रूप की सजीव प्रतिमा कलामयी रूपमती, गुणवती होने के साथ भारतीय नारीत्व का उज्ज्वल रत्न थी जिसने अपने सतीत्व रक्षार्थ विषपान कर लिया था।

आज न प्रणयिनी रूप है न उसके प्रिय बाजबहादुर, किन्तु सुषमा शाली प्रकृति के बीच धार से २२ मील दक्षिण में अवस्थित मांडव दुर्ग के प्रासाद आतप वर्षा सहते मधुर प्रेम कथा की स्मृति को साकार कर रहे हैं। यह मांडव वीर आल्हा ऊदल की उस स्मृति को जागृत कर देता है। जिन्होंने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिये तत्कालीन नरेश को परास्त कर मरवा डाला था और मांडव को ध्वंस कर दिया था।

मांडव दुर्ग की प्राकृतिक सुषमा, प्रासादों, वन-वृक्षों, तरु-लतिकाओं तृण-वीरुधों में मानों रूपरानी की मधुर प्रणय कथा एवं बलिदान निखर रहा है जिन्हें याद कर भावुक मन एक कसक के साथ गुन-गुना उठता है......

रूपा के महलों में सोई, मुस्लिम युग की याद।
मांडव दुर्ग मौन हो जैसे, करता हो फरियाद।
जहाँ कभी संगीत निगुंजन, था अनुपम उल्लास।
आज बने भग्नावशेष हैं, रूपमती प्रासाद।
उस युग की है याद दिलाता, महल हिंडोला मानी।
त्याग मयी है मालव धरणी, संस्कृतियों की रानी।